श्री हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला २८८

॥ श्रीः ॥

रामकृष्णविलोमकाव्यम्

ग्रन्थकारकृत 'मर्मप्रकाशिका' संस्कृतव्याख्यासहितम्

हिन्दीव्याख्याकार

डॉ० कामेश्वरनाथ मिश्र

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

॥ सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम् ॥

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला
२८८

दैवज्ञश्रीसूर्यकविविरचितं

रामकृष्णविलोमकाव्यम्

स्वोपज्ञटीकया 'मर्मप्रकाशिका' हिन्दीव्याख्यया चोपेतम्

हिन्दीव्याख्याकारः
डॉ० श्रीकामेश्वरनाथमिश्रः
एम० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्याचार्यश्च

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१
१९७०

॥ सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम् ॥

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२७

मूल्य :

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
REVISED PRICE
Rs
G. MANDIR, VARANASI

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० ८, वाराणसी-१ (भारतवर्ष)

फोन : ६३१४५

प्रधान शाखा

चौखम्बा विद्याभवन

चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१

फोन : ६३०७६

THE

HARIDAS SANSKRIT SERIES

288

*****

RĀMAKṚṢṆA-VILOMA-KĀVYA

OF

DAIVAJÑA ŚRĪ SŪRYA PAṆḌITA

With

An Auto-Commentary

Edited with

The Marmaprakāśikā Hindi Commentary and Introduction

By

DR KĀMESVARA NĀTHA MIŚRA,

M. A., Ph. D., Sahityachārya

THE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1

1970

॥ सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम् ॥

The Chowkhamba Sanskrit Series Office
Gopal Mandir Lane
P. O. Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi-1 (India)
1970
Phone : 63145

First Edition
1970
Price Rs.

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone : 63076

प्राक्कथन

अपनी अद्भुत क्षमता के कारण संस्कृत भाषा ने अपने माध्यम से अनेक कवियों द्वारा विभिन्न प्रकार के साहित्य को जन्म दिया। इसमें प्रसाद गुण संवलित रचनाओं से लेकर अत्यन्त कठिन चित्रकाव्य एवं भाषासमक जैसे निदर्शन उपलब्ध होते हैं। लौकिक संस्कृत में महाकाव्य, गद्यकाव्य, आख्यायिका तथा चम्पूकाव्य सदृश प्रबन्धात्मक साहित्य में भी यत्र-तत्र कवियों तथा लेखकों ने अपना पाण्डित्य भी प्रदर्शित किया है। इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र ग्रन्थों में भी कवियों का बुद्धिविलास दृष्टिगोचर होता है। हृदयतत्त्व की अपेक्षा बुद्धितत्त्व का प्रधानता प्रदर्शित करने वाले ग्रन्थों की संस्कृत में एक लम्बी परम्परा ही विद्यमान है।

ऐसे बुद्धिसापेक्ष ग्रन्थों में सूर्यकवि का 'रामकृष्णविलोमकाव्यम्' भी विशेष भावपूर्ण एवं कलात्मक है। इसमें मात्र छत्तीस श्लोक हैं जिनका उत्तरार्ध पूर्वार्ध का विलोम क्रम से पाठ करने पर बनता है। इसी प्रकार पूर्वार्ध का सम्बन्ध रामकथा से तथा उत्तरार्ध का कृष्णकथा से है। अब तक यह ग्रन्थ कवि की स्वयं की संस्कृतव्याख्या के साथ काव्यमाला के एक गुच्छक में प्रकाशित हुआ था। अन्यत्र संस्कृत साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में से कुछ में इसका नाममात्र का परिचय मिलता था। वहाँ इसके उद्धरण भी प्रायः नहीं ही मिलते थे।

संयोग से एक दिन इस ग्रन्थ के विषय में आदरणीय मनीषी बन्धु श्री सत्कारिशर्मा मुखोपाध्याय से चर्चा चल पड़ी। उनकी इच्छा हुई कि चित्रकाव्य की एक विस्तृत भूमिका के साथ इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद

भी प्रकाशित किया जाये। उन्होंने विश्वासपूर्वक यह कार्य मुझे सौंपा जो उनके सद्भाव तथा भगवान् शिव की कृपा से यथासमय पूरा हो गया। इसका पूरा श्रेय उनको ही है अतः मैं उनको आभारपूर्वक धन्यवाद देता हूँ। चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के प्रबन्धकों ने भी स्नेह के साथ इस पुस्तिका को यथाशीघ्र प्रकाशित करने की तत्परता दिखा कर मुझे अपना आभारी बना लिया है। मैं उनका भी हृदय से आभारी हूँ। मुझे आशा है कि इस प्रकार के ग्रन्थरत्नों को प्रकाश में लाकर, इस संस्था के व्यवस्थापक महोदय निरन्तर संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहेंगे। अपने भाई श्री बदरीनाथ तिवारी एम० ए० शास्त्री को मैं बधाई देता हूँ जिन्होंने मेरे पीछे पड़कर अनुवाद आदि का कार्य करा लेने में सफलता पाई। विश्वास है कि संस्कृत साहित्य-प्रेमी इससे लाभान्वित होंगे।

सकलडीहा
रामनवमी, १५ अप्रेल ७०

विनीत
कामेश्वरनाथ मिश्र

भूमिका

वाग्विलासात्मक कविकर्म काव्य है। कवि लौकिक विषयों का अपनी क्षमता के अनुसार चित्रण करता है। इस चित्रण का अभिनयदर्शन अथवा पठन दर्शक तथा पाठक के हृदय में चमत्कार की सृष्टि करता है। सामाजिक में चमत्कृतिजन्य आनन्द की प्रचुर उत्पत्ति के लिये कवि विभिन्न उपायों का ग्रहण करता है, क्योंकि लोकविषयों को शब्दात्मक करना मात्र ही काव्य नहीं है। चमत्कार अथवा सौन्दर्यविहीन शब्द-रचना ही काव्य नहीं। यदि ऐसा होता तो निम्नलिखित छन्द भी काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण होता—

दीर्घपुच्छश्चतुष्पादः ककुद्मान् लम्बकम्बलः।
गोरपत्यं बलीवर्दस्तृणमत्ति मुखेन सः॥

(सरस्वतीकण्ठाभरण १।४१।)

इससे सिद्ध होता है कि लौकिक विषयों को शब्दात्मक स्वरूप देना ही काव्य नहीं है, अपितु उसे काव्य की संज्ञा देने के लिए किसी और पदार्थ की भी अपेक्षा होती है। यह 'कुछ और अपेक्षित' पदार्थ विभिन्न लोगों के मन में विभिन्न रूपों में आया। समस्त भिन्नताओं के होने पर भी सभी के विचारों में एक समता अवश्य थी और वह थी काव्य की शैलीगत विवेचना। सबने यह स्वीकार किया कि किसी बात को कुछ ऐसे ढङ्ग से प्रस्तुत किया जाय कि उसमें चमत्कार, आनन्द अथवा प्रीति की क्षमता हो।

धार्मिक साहित्य में चमत्कार का बीज—संहिताकाल से ही चमत्कार-पूर्ण ढङ्ग से कुछ कहने की परिपाटी चली आ रही है। पुरुषसूक्त में ही "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" आदि में यज्ञ से यज्ञ के सम्पादन की बात श्रोता के मन में कौतूहल उत्पन्न कर ही देती है। इसी प्रकार अन्य संहिताओं के अनेक सूक्तों में इस प्रकार का वर्णन मिल सकता है। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ भी इससे अछूते नहीं हैं। बृहदारण्यक के पञ्चम अध्याय के द्वितीय ब्राह्मण में देव, मनुष्य तथा असुरों द्वारा प्रजापति से उपदेश का अनुरोध करने पर प्रजापति ने उनसे

'द' यह अक्षर कहा। उन्होंने एक ही वर्ण से उनको क्रमशः दमन, दान और दया का उपदेश दिया। अन्य उपनिषदों में भी अनेक सीधी-सादी बातों का रहस्यमय ढङ्ग से वर्णन किया है। महाभारत में व्यास की उक्ति कि—

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा॥

कूटात्मकता की ओर संकेत करती है। श्रीमद्भागवत में "परोक्षप्रिया ह वै देवाः" की अच्छी विवेचना प्रस्तुत की गई है। पुरञ्जनोपाख्यान की रहस्यात्मकता का स्पष्ट कारण निर्देश दिया है—

बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम्।
यत् परोक्षप्रियो देवो भगवान विश्वभावनः॥ (४।२८।६५।)

इसमें भी आनन्द की बात तो यह है कि वहीं चतुर्थ स्कन्ध के २९ वें अध्याय के ५३ वें श्लोक की गद्यमयी ललित व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है। सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य में इस प्रकार के वर्णनों के अन्य कारण हो सकते हैं, किन्तु चमत्कारपूर्ण ढङ्ग से कहने की सहज मानवीय अभिलाषा भी निहित है।

काव्यशास्त्र में भामह जैसे आलङ्कारिकों ने इस सीधे से न कहने के ढङ्ग को वक्रोक्ति कहा है और इसको ही समस्त अलङ्कारों का—कथनगत वैशिष्ट्यों का—प्राण माना है। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है "कोऽलङ्कारोऽनया विना।" यहाँ यह निश्चित है कि वक्रोक्ति भामह के लिये मात्र एक अलङ्कार भेद नहीं है, अपितु सभी अलङ्कारों के मूल में विद्यमान सरलता के विपरीत वक्रता लाने का एकमात्र हेतु है। यही भाव 'वैदग्ध्यभङ्गीभणिति' में भी देखा जा सकता है। यह शब्द और अर्थगत वैचित्र्य ही काव्य का प्राण है ऐसा मानकर भारतीय समीक्षाशास्त्र में एक अलङ्कार-सम्प्रदाय का ही श्रीगणेश हुआ। आधुनिक आलोचकों के शब्दों में इसे कलापक्ष के नाम से कहा जा सकता है।

चित्रालङ्कार का स्वरूप—सभी आलङ्कारिकों ने किसी-न-किसी रूप में अलङ्कारों को स्वीकार किया है, किन्तु उनमें भी अलङ्कार-सम्प्रदायवादी भामह, रुद्रट, दण्डी आदि ने तो काव्य के बाह्यपक्ष, कलापक्ष को बहुत महत्त्व दिया है और उनके भेदोपभेदों का निरूपण किया है। काव्य-शरीर के रूप में स्वीकृत

शब्द और अर्थ इन दोनों से सम्बद्ध अनेक अलङ्कारों का विवरण सम्भवतः सर्वत्र मिलता है—न्यूनाधिक्य हो सकता है। शब्दालङ्कारों में ही जहाँ यमक और श्लेष जैसे अलङ्कारों का निरूपण है वहीं प्रायः प्रमुख आलङ्कारिकों ने चित्रालंकार भी स्वीकार किया है। रुद्रट ने चित्रालङ्कार की परिभाषा निम्न रूप में दी है—

भङ्ग्यन्तरकृततत्क्रमवर्णनिमित्तानि वस्तुरूपाणि ।
साङ्कानि विचित्राणि च रच्यन्ते यत्र तच्चित्रम् ॥

(काव्यालङ्कार ५।१॥)

उसी पर नमिसाधु की टीका—"यत्र काव्ये वस्तूनां चक्रादीनां रूपाणि संस्थानानि रच्यन्ते निबध्यन्ते तच्चित्रसादृश्यादाश्चर्याद् वा चित्रं नामालङ्कारः।" से स्पष्ट है कि छन्दों के वर्णों को इस क्रम से लिखा जाय कि विशेष प्रकार का चित्र बन जाये और लोगों को आश्चर्य हो, हृदय में चमत्कार उत्पन्न हो जाये, उसी को चित्रालङ्कार कहते हैं। सत्य ही इस प्रकार की विचित्र बात से आश्चर्य हो ही जाता है। दण्डी ने परिभाषा सामान्य न देकर विशेष-विशेष का लक्षण तथा उदाहरण दिया है। आचार्य विश्वनाथ ने भी रुद्रट जैसी ही परिभाषा दी है—कि जब वर्ण पद्म आदि आकार का कारण बनते हैं तब चित्रालंकार होता है। "पद्माद्याकारहेतुत्वे वर्णानां चित्रमुच्यते।" (सा० द० १।१३)।

यह बात सत्य है कि वर्णों से चित्रविशेष—आकृतिविशेष—बना देना चित्रालंकारों में प्रमुख है, किन्तु यह भी सत्य है कि यही केवल, चित्रालंकार नहीं है। नमिसाधु की टीका में प्रयुक्त "आश्चर्याद्वा चित्रं नामालंकारः" अधिक उचित प्रतीत होता है। आश्चर्य किसी असामान्य दर्शन से होता है। यह असामान्यता केवल शब्दों के आकार बनाने से ही नहीं आती। उसके अन्य भी उपाय हो सकते हैं, और उन सबका निदर्शन भी मिलता है।

महाराज भोज ने छः प्रकार के चित्रालंकारों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार—वर्ण, स्थान, स्वर, आकार, गति तथा बन्ध इन आधारों पर इस अलंकार का निरूपण मान्य है।

वर्णस्थानस्वराकारगतिबन्धान् प्रतीहयः ।
नियमस्तद्बुधैः षोढा चित्रमित्यभिधीयते ॥

(स० कण्ठाभरण २।१०९॥)

वर्णचित्र—जहाँ पर अक्षरों के विविध प्रकार के विशिष्ट प्रयोगों द्वारा आश्चर्य उत्पन्न किया जाता है, वहाँ वर्णचित्र होता है। कहीं एक छन्द में केवल चार व्यञ्जन, कहीं तीन, कहीं दो, कहीं केवल एक, कहीं क्रमशः सभी, कहीं षड्ज आदि के स्वरव्यञ्जन आदि का ही प्रयोग करके कवि विचित्र चित्रण करता है। वहीं से उद्धृत क्रमस्थव्यञ्जनों का उदाहरण दर्शनीय है—

कः खगौघङ् चिच्छैजा झाञ्ज्ञो टौठीडडंढणः।
तथोदधीन् पफर्बाभीर्मयोरिल्वाशिषां सहः॥

स्थानचित्र—उच्चारण स्थानों के आधार पर भी केवल एक, दो अथवा अनेक स्थानों से उच्चारित वर्णों के त्याग अथवा ग्रहण से भी छन्दोरचना करना चित्रात्मक होता है। चतुःस्थानचित्र, निष्कण्ठ्य, निस्तालव्य, निर्दन्त्य, निरोष्ठ्य, निर्मूर्धन्य आदि वर्णों से बने छन्दों के अनेक उदाहरण भारवि तथा माघ के किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध के क्रमशः १५वें तथा १९वें सर्गों में मिल सकते हैं। दण्डी ने तो दशकुमारचरित में ओष्ठ कटे हुए राजकुमार द्वारा पूरे उछ्वास में निरोष्ठ्य पदों का ही प्रयोग किया है। केवल कण्ठ्यवर्णों के प्रयोग से बना छन्द दर्शनीय है—

अगा गाङ्गाङ्गकाकाकगाहकघककाकहा।
अहाहाङ्क खगाङ्कागकङ्कागखगकाकक॥ (काव्यादर्श ३।९१॥)

स्वरचित्र—स्वरों के आधार पर भी ह्रस्वैकस्वर, दीर्घैकस्वर, ह्रस्वद्विस्वर, दीर्घद्विस्वर, अपास्तसमस्तस्वर आदि विचित्र प्रयोग होते हैं। दीर्घ एकस्वर का उदाहरण दण्डी के काव्यादर्श से उद्धृत है—

सामायामा माया मासा मारानायायाना रामा।
यानावारारावानाया मायारामा मारायामा॥ (३।८७॥)

यहाँ सभी व्यञ्जन केवल दीर्घ अकार से युक्त हैं।

आकारचित्र—वस्तुतः यही वह प्रयोग है जिसके कारण रुद्रट आदि ने इस अलंकार को चित्र संज्ञा दी। इस प्रकार में वर्णों को इस क्रम से रखा जाता है कि चित्र कई प्रकार के कमलों का बनता है। कहीं चतुर्दल, कहीं षड्दल कहीं अष्टदल और कहीं अधिकदल भी। विश्वनाथ द्वारा उदाहृत छन्द का गुरुवर डा० सत्यव्रत सिंह द्वारा साहित्यदर्पण के ४८९ पृष्ठ पर दिया गया चित्र निम्नविध है।

मारमा सुषमा चारु-रुचा मारवधूत्तमा।
मात्तधूर्ततमावासा सा वामा मेऽस्तु मा रमा॥

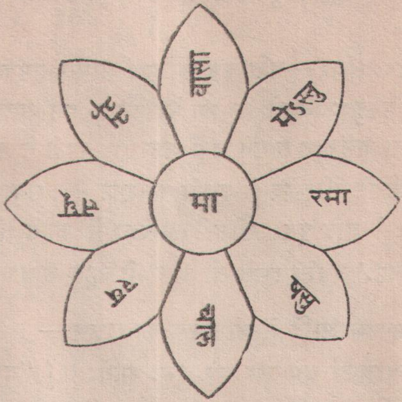

गतिचित्र—यह विचित्रता छन्द के पदों के पढ़ने पर आश्रित है। कहीं प्रथम पद ही विलोम क्रम से पढ़ने पर द्वितीय चरण बन जाता है, कहीं प्रथम-तृतीय, या द्वितीय-चतुर्थ अथवा ऐसे ही पदों में शब्दों की एकरूपता होती है, किन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न होता है। इस प्रकार के काव्य में गतप्रत्यागत अथवा विलोमकाव्य अधिक सुन्दर बन पड़े हैं। अपना विवेच्य रामकृष्णविलोमकाव्य इस रीति का उत्कृष्ट निदर्शन है।

बन्धचित्र—यह भी आकारचित्र ही है। इसमें विशेष प्रकार के बन्ध बनाये जाते हैं—अनेक प्रकार के चित्र बनते हैं और उन्हीं में एक निश्चित क्रम से वर्णविन्यास होता है। आकारचित्र में प्रधानता कमलबन्ध को दी गई है जब कि इस विभाग में प्रायः सभी प्रकार के चित्रों का समावेश हो जाता है।

चित्रसाहित्य—संस्कृत भाषा में प्रचुर चित्रसाहित्य विद्यमान है। धार्मिक वाङ्मय में इसका निहित मूल प्रदर्शित किया जा चुका है। तन्त्रसाहित्य में यन्त्रों का तो स्वरूप और भी विचित्र है। बीजमन्त्र अपना विशिष्ट प्रयोजन और अर्थ रखते ही हैं।

उपर्युक्त षड्विध चित्रकाव्यों में गतिचित्र को छोड़कर शेष के उदाहरण या तो लक्षण ग्रन्थों में मिलते हैं या भारवि और माघ जैसे कवियों के महाकाव्यों में। दण्डी, रुद्रट तथा भोज ने अपने आकरग्रन्थों में इनका विशद लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किया है, किन्तु गतिचित्र का एक विशाल साहित्य उपलब्ध होता है।

गतिचित्र का आधार—गतिचित्र का मूल आधार यमक है। यह स्वयं में बहुत विस्तृत है। वस्तुतः जितने अधिक भेदोपभेद इस अलंकार के हैं, उतने भेदोंवाला कोई दूसरा अलंकार सामने नहीं आया। दण्डी ने काव्यादर्श में इसके भेदों का दिग्दर्शन तीसरे परिच्छेद के दूसरी कारिका में कराया है जिसके आधार पर ३१५ भेद करने के बाद पुनः तीसरी कारिका में कहते हैं—'अत्यन्तबहवस्तेषां भेदः संभेदयोनयः' अर्थात् इसके तो और भी बहुत अधिक भेद संभव हैं।

वस्तुतः काव्यप्रकाश आदि में जो यमक का लक्षण—

अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः। ("यमकम्''''" ९।६)

दिया गया है, उससे चित्रता की संभावनायें भी अधिक हो सकती हैं। दूसरा आधार श्लेष है जिसके आधार पर एक ही पद का प्रयोग करके अनेक अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं। इतसे भी एक सहृदय विद्वान् चमत्कृत हो उठता है। प्रयोग विचित्र वर्णों का, पदों का, होने से चित्रात्मकता आ ही जाती है और पाठक को आश्चर्य भी। उससे भी अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि इनका प्रयोग केवल एक दो स्थानों पर ही नहीं हुआ है अपितु आदि से अन्त तक इनके ही आधार पर महाकाव्य तक लिखे गए हैं। ये लिखे गए काव्यग्रन्थ केवल एक कालविशेष की उपज न होकर, विभिन्न समयों में विभिन्न स्थानों पर उत्पन्न कवियों की देन हैं।

चित्रकाव्य का विकास—यद्यपि यमक आदि अलंकारों का प्रयोग कालिदास आदि महाकवियों ने भी किया है, किन्तु वहाँ भावपक्ष प्रधान तथा कलापक्ष—विशेषकर अलंकारप्रयोग—गौण है। सुबन्धु ने सजग होकर प्रत्यक्षरश्लेषमयी प्रबन्ध रचना का उपक्रम किया था। दण्डी ने पूरे उछ्वास में निरोष्ठ्य वर्णों का प्रयोग करके अपनी क्षमता का परिचय दिया है। शायद ही कोई चम्पूकाव्य हो जिसमें यमक और श्लेश का विपुल प्रयोग न हो।

स्वतन्त्र रूप से घटकर्पर का यमककाव्य उपलब्ध होता है जिससे परवर्ती महाकाव्यकारों को प्रेरणा मिली। भारवि ने अपने ग्रन्थ के १५ वें सर्ग में कई प्रकार के चित्रात्मक प्रयोग किये हैं। पदान्तादि, पादादि, समुद्ग, शृङ्खला, महायमक आदि के अतिरिक्त प्रतिलोमानुलोमपाद तथा प्रतिलोमानुलोम छन्द आदि यमक प्रकारों, निरोष्ठ्य आदि स्थानचित्रों, एकाक्षर, द्व्यक्षर आदि वर्णचित्रों, गोमूत्रिका आदि बन्धचित्रों के साथ ही अर्थत्रयवाची श्लेषचित्र का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुगामी माघ ने भी १९ वें सर्ग में एकाक्षर, द्व्यक्षर, असंयोग, आदि वर्णचित्र, चक्रबन्ध, अर्धभ्रमक, मुरज, सर्वतोभद्र आदि आकार तथा बन्धचित्रों, श्लोकप्रतिलोमयमक, अर्धप्रतिलोम, समुद्गक, गतप्रत्यागत आदि यमक प्रकारों तथा अतालव्य आदि स्थानचित्रों का समुचित प्रयोग किया है। इन्होंने भी भारवि की भांति अर्थत्रयवाची श्लेषकाव्य की रचना की है। श्रीहर्ष की पंचनली का श्लेष तो साहित्यिक जगत् में विख्यात है ही। इसी प्रकार भट्टि ने भी अपने महाकाव्य के १० वें सर्ग में बीस श्लोकों में यमकों का जानबूझ कर प्रयोग किया है। कृष्ण चैतन्य ने अपने इतिहासग्रन्थ के ३०० पृष्ठ पर यह स्वीकार किया है कि भट्टि की कलात्मक शैली में महाकाव्य के माध्यम से व्याकरण की शिक्षा देने की प्रेरणा भट्टभौम, हलायुध तथा वासुदेव भट्टथिरी आदि कवियों को मिली। भट्टभौम ने 'रावणार्जुनीयम्' नाम का २७ सर्गों का महाकाव्य लिखा है जिसका कथानक रावण और कार्तवीर्य अर्जुन से सम्बद्ध है। इसमें भी भट्टिकाव्य जैसी पाणिनीय व्याकरण की काव्यात्मक व्याख्या है। दशमशतक ईसवी के हलायुध ने 'कविरहस्यम्' में धातुप्रयोग की शिक्षा देते हुए कृष्णराज का चरित उपनिबद्ध किया है। कृष्णराज राष्ट्रकूटराज थे। वासुदेव भट्टथिरी ने भट्टभौम सा उद्देश्य लेकर 'वासुदेवविजय' काव्य की रचना की जिसका वर्ण्यविषय कृष्ण का जीवनचरित है। विन्टरनिट्ज महोदय ने हेमचन्द्र के 'कुमारपालचरितम्' को भी इसी कोटि में रखा है जिसमें प्रथम २० सर्गों में संस्कृत व्याकरण तथा शेष ८ सर्गों में प्राकृतव्याकरण से सम्बद्ध छन्द हैं। इन्हीं महोदय ने १८ वीं शती के श्री शिवरामत्रिपाठी की 'नक्षत्रमाला' को भी चित्रकाव्य कहा है। महाकाव्यों से प्रेरित उपर्युक्त काव्यग्रन्थ इसीलिए चित्रकाव्य हैं क्योंकि वर्ण, स्थान, स्वर, आकार तथा बन्ध आदि का माध्यम

ग्रहण न करने पर भी एक मुख्य उद्देश्य के निरूपण के साथ दूसरा विषय इतने सुन्दर प्रकार से निरूपित किया गया है कि अध्येता को यह प्रयोग नितान्त असामान्य होने से आश्चार्यान्वित कर देता है।

केरल के वासुदेव कवि जिनका समय अनिश्चित होने पर भी केरलीय नवम शताब्दी के माने जाते हैं, एक ऐसे विचित्र कवि हैं जिन्होंने अपनी समस्त रचनायें यमककाव्य के रूप में की हैं। इनके चार यमककाव्य हैं। इनके सर्व-प्रसिद्ध 'युधिष्ठिरविजय' में आठ उच्छ्वास हैं प्रतिपाद्य विषय ग्रन्थ के नाम से ही स्पष्ट है। 'त्रिपुरदहन' भी महत्वपूर्ण कृति है। इसमें तीन आश्वास तथा १९४ में प्रायः सभी आर्याछन्द हैं। इनके 'सौरिकथा' ग्रन्थ को भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है। 'जलोदय' को कुछ लोग कालिदास की, कुछ इनके पिता रवि भट्टथिरि की रचना मानते हैं, किन्तु त्रिवेन्द्रम विश्वविद्यालय से प्रकाशित पुस्तक की भूमिका में इसे इनका ही सिद्ध किया गया है। इनके यमक अत्यन्त मनोरम तथा सरस हैं और शैली प्रसादगुणपूर्ण है। उदाहरणार्थ त्रिपुरदहनम् के प्रथम आश्वास का ७३ वाँ श्लोक प्रस्तुत है—

द्युसदामुदयानवतानवता नवता न बताश्नुत तन्महसा।
स जनोविजहार सदारसदा रसदा सदा जयतूर्यमपि॥

श्लेष के आधार पर एक ऐसे भी चित्रकाव्य की परम्परा चली जिसमें केवल विचित्र ढंग से गौण लक्ष्य की ही पूर्ति नहीं हुई अपितु एक से अधिक कथानक एकसाथ बिना क्रमभंग के चला करते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के संध्याकरनन्दी ने २२० आर्या छन्दों में पाँच सर्गों का एक श्लेषकाव्य रामचरितम् लिखा जिसमें भगवान् राम तथा बंगाल के राजा रामपाल की कथा वर्णित है। धनञ्जय ने भी १२ वीं शताब्दी में १८ सर्गों का रामायण तथा महाभारत की कथाओं को एक साथ प्रस्तुत करने वाला 'राघवपाण्डवीयम्' नामक द्विसंधानकाव्य लिखा। धनञ्जय के कुछ ही समय बाद कदम्बवंशीय राजा कामदेव (११८२–९७) की संरक्षिता में माधवभट्ट ने १३ सर्गो में 'राघवपाण्डवीयम्' नामक महाकाव्य की रचना की जिसमें ६६८ श्लोकों में रामायण तथा महाभारत की कथा एक साथ वर्णित है। सोलहवीं शताब्दी के विजयनगर के राजा व्यंकट के सभापण्डित श्री चिदम्बर कवि ने 'राघवपाण्डवयादवीयम्' श्लेषकाव्य लिखा था। इसके

मात्र तीन सर्ग उपलब्ध हैं। इसमें रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भागवत को कथा है। श्लेषकाव्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है इन्हीं के 'पञ्चकल्याण चम्पू' में जहाँ राम, कृष्ण, शिव, विष्णु तथा सुब्रह्मण्य के विवाहों की एक साथ संघटना है। इस चम्पू का केवल दो स्तबक प्राप्त हैं। इस पर इन्हीं की टीका भी है। 'राघवनैषधीयम्' श्लेषकाव्य में राम तथा नल की कथा का वर्णन जयशङ्कर के पुत्र हरदत्तसूरि ने १८वीं शती में किया।

श्लेषकाव्य की भाँति यमक का सहारा लेकर बहुत से कवियों ने एक से अधिक विषयों का एकसाथ समावेश अपने काव्य में किया है। ये काव्यग्रन्थ श्लेषग्रन्थों की अपेक्षा आकार में लघु हैं। वासुदेव आदि के यमक से इस यमक काव्य में भिन्नता है। पूर्व में केवल अनुलोम यमक की विधि है किन्तु यहाँ प्रतिलोम, विलोम अथवा गतप्रत्यागत यमक है। यह पूर्णतः गतिचित्र का रूप है।

लक्ष्मणभट्ट के पुत्र रामचन्द्र ने १५४२ ई० के लगभग अयोध्या में 'रसिकरञ्जनम्' नामक विलोमकाव्य रचा जिसका सीधा पाठ करने पर शृङ्गारपरक अर्थ निकलता है और उलटा पाठ करने पर संन्यासपरक। कृष्णचैतैन्य ने सोमप्रभाचार्य के 'शृङ्गारवैराग्यतरङ्गिणी' की भी चर्चा अपने 'संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास' में की है। इसके ऊपर निःसन्देह रसिकरञ्जनम् का असर है। नाम से विषय तो स्पष्ट ही हो जाता है। कीथ महोदय ने अपने प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ में वेङ्कटाध्वरि के 'यादवराघवीयम्' विलोमकाव्य की चर्चा करते हुए पादटिप्पणी में बताया है कि इसमें केवल ३० छन्द हैं। इसमें अनुलोमक्रम से पढ़ने पर कृष्णकथा तथा विलोम पढ़ने पर रामकथा बनती है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इनका समय १६वीं शताब्दी माना है। चालुक्यनरेश सोमदेव के सभापण्डित विद्यामाधव ने ९ सर्गों में 'पार्वतीरुक्मिणीय' लिखकर शिव-पार्वती तथा कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह वर्णन किया है। यह भी एक विलोमकाव्य है।

रामकृष्णविलोमकाव्य—दैवज्ञ सूर्यकवि का इतिहास ग्रन्थ में सर्वप्रथम उल्लेख पं० बलदेव उपाध्याय ने किया है, किन्तु उनको सम्भवतः ग्रन्थ देखने को नहीं मिला था क्योंकि उन्होंने इनके ग्रन्थ 'रामकृष्णविलोमकाव्य' में गृहीत ३६ श्लोकों का निश्चयात्मक वर्णन न देकर श्लोकों की संख्या '३६ या ३८' बतलाये

हैं। पण्डित जी ने ही इनका समय १६ वीं शताब्दी माना है। जैसा कि इनके नाम के विशेषण 'दैवज्ञ' पद से स्पष्ट है, ये एक ज्योतिषी भी थे। इनके ज्योतिष पर लिखे गये दो ग्रंथ 'सूर्यप्रकाश' तथा 'लीलावती' की टीका है।

श्री सूर्य कवि ने अपने पिता ज्ञानाधिराज को एक बड़ा 'सुगणक' माना है जिनके ग्रन्थों को पढ़कर यह भी आचार्य कोटि में आये हैं। इन्होंने अपने काव्य को 'द्राक्षापाक' कहा है और बड़ी प्रशंसा की है कि यहाँ न तो एकाक्षरता की दुरूहता है, न अप्रसिद्धों का उल्लेख और न व्याकरण के कठिन शब्दों का प्रयोग ही है। इस प्रकार—

नैकाक्षराणि छन्दोक्तिर्नाप्रसिद्धाभिधानकम्।
नैव व्याकरणक्लिष्टं द्राक्षापाकोऽत्र केवलम्॥

केवल ३६ श्लोकों के काव्य के कलेवर के साथ विषय भी छोटा ही है। प्रथम पाँच छन्दों में तो केवल निर्गुण-सगुण रूप तथा उपाय का वर्णन है। पुनः विश्वामित्र द्वारा यज्ञरक्षार्थ कुमारों की याचना, ताड़का को भेजने, उसके साथ शूर्पणखा के भी आने, कौशिक की यज्ञव्यवस्था, मुनियों द्वारा यागप्रशंसा, जनक के घर राम-लक्ष्मण का पहुँचना, स्वयंवरार्थ आगत राजाओं का वर्णन, धनुर्भङ्ग पर जानकी द्वारा माल्यार्पण, परशुराम का आगमन, परशुराम का राम के प्रति क्रुद्ध वचन, कैकेयी का सापत्नभाव, अहल्योद्धार, शूर्पणखा का नासिकोच्छेद, भिक्षु रावण का आगमन, राम का जानकी को न पाना आदि वृत्तान्त रामपक्ष के वर्णित हैं। इसी प्रकार कृष्ण के भी जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख है। सर्वत्र घटनाएँ—चाहे रामपक्ष की हों चाहे कृष्णपक्ष की—मात्र वर्णन-सी हैं।

इस विलोमकाव्य में इन्द्रवज्रा, शालिनी, रथोद्धता, अनुष्टुप्, विद्युन्माला, छन्दों का प्रयोग हुआ है। लघुकाय विलोमकाव्य में इतने अधिक छन्दों का प्रयोग अत्यन्त कौतूकपूर्ण है। श्लेषकाव्य में तो एक क्षण के लिए यह स्वीकार किया जा सकता है कि एक प्रकार के छन्दों का ही नहीं, अनेक प्रकार के छन्दों का उपयोग हो, किन्तु जहाँ पर वर्णों को उलट कर भी पढ़ना हो, वहाँ भिन्न छन्दों में काव्यरचना करना किसी भारतीपुत्र का ही सामर्थ्य है। इसे कवि ने स्वयं भी स्वीकार किया है, प्रस्तावना में—

कदाचिदपि संतरेत् कृतिपरो नरो नीरधिं
कथंचिदपि धावति प्रवरधाम धाराध्वनिः।
ऋतेऽप्यतिविशारदा प्रचुरशारदानुग्रहं
विलोमकविताकृतौ सुकविधीरधारा भवेत् ॥

सूर्य कवि की रचना का कलापक्ष अत्यन्त मनोहर है। विलोमकाव्य लिखते समय छन्दःपूर्ति, अनुलोम तथा प्रतिलोम क्रमों के साकांक्ष पदों की योग्य आसत्ति, तथा आरम्भ से अन्त तक प्रारब्ध कथाओं की क्रमबद्धता ये तीनों बातें अत्यन्त कठिन हैं। किन्तु संयोग से ये सब प्रायः समुचित अंश में विद्यमान हैं। कवि ने स्वयं स्वीकारा है—

छन्दःपूरणमुत्क्रमक्रमविधौ साकाङ्क्षता तत्पदे-
ष्वारम्भाच्चरिते क्रमोऽपि सुतरामेतत्त्रयं दुर्गमम्। (टीका, श्लोक २)

यमक के अनेक भेदों में सूर्य ने केवल दो प्रकार—समाक्षरपद तथा विषमाक्षरार्ध—को स्वीकार किया है। इनमें भी प्रथम के समान तथा भिन्नार्थक और द्वितीय के भिन्नाक्षर तथा भिन्नार्थ भेदों का उपयोग है। यह भी इन्हीं की टीका की प्रस्तावना से ज्ञात होता है। (द्रष्टव्य प्रस्तावना, श्लोक ५)

चित्रकाव्य की कठिनाइयाँ—चित्रकाव्य का अध्ययन करते समय कई प्रकार की कठिनाइयाँ भी आती हैं। कहीं पर यत्-तद् का अथवा क्रिया का अध्याहार करना पड़ता है, कहीं पढ़ते समय ही पादों के आदि अथवा अन्त में विसर्ग को वैकल्पिक मानना पड़ता है और कहीं-कहीं तो लक्षणा या व्यञ्जना के बिना अर्थ निकलता ही नहीं। कवि ने पिङ्गलशास्त्र का मत उद्धृत किया है।

अध्याहारो यत्तदोर्वा क्रियायाः पादाद्यन्ते वा विसर्गो विसर्गः।
कुत्राप्यूह्या लक्षणव्यञ्जना वा विद्यादेतां चित्रकाव्यानुपूर्वीम् ॥
(टीका की भूमिका)

विपत्ति का अन्त यहीं नहीं हो जाता। कहीं-कहीं तो केवल एक शब्द प्रतीक की भाँति लिखा रहता है, आगे समस्त सम्बद्ध पदों के साथ सन्दर्भों का भी अध्याहार करना पड़ता है। यह सब काम बिना व्याकरण के प्रौढ़ ज्ञान और अभ्यास के सम्भव नहीं। कहीं-कहीं अत्यन्त सूक्ष्म कथाओं को धर्मशास्त्र में देखने की आवश्यकता होती है। काशी के सुमेरुपीठ के शङ्कराचार्य श्री महेश्वरानन्द

सरस्वती जी ने रामरूप कवि के 'चित्रकाव्यकौतुकम्' नामक चित्रकाव्य की भूमिका में लिखा है कि जिसकी जिह्वा पर समस्त धातुयें विराजती हैं, सभी तद्धितवृत्तियाँ प्रसन्नतापूर्वक कण्ठ में स्थित रहती हैं, कृत् तथा अन्य प्रत्ययों का समुदाय जिनके हृदय में सदा विद्यमान हैं, उन्हीं को बन्धकाव्य का आनन्द मिल पाता है—

सर्वो धातुगणः क्रियादिविपुलो जिह्वाजिरे राजते
विश्वास्तद्धितवृत्तयः प्रमुदिताः क्रीडन्ति कण्ठस्थिताः ।
कृत्संज्ञा विलसन्ति प्रत्ययघटाः स्वान्तान्तरालाम्बरे
येषां ते विभवो भवन्ति कृतिनो बन्धोत्कटे कानने ॥ १६ ॥

संयोग की बात है कि सूर्य का काव्य बहुत कठिन नहीं है। एक तुल्याक्षरपद यमक का उदाहरण दर्शनीय है—

चिरं विरंचिर्न चिरं विरञ्चिः साकारता सत्यसतारका सा ।
साकारता सत्यसतारका सा चिरंविरञ्चिर्न चिरं विरञ्चिः ॥ २ ॥

इस छन्द को चाहे सीधे-सीधे पढ़ा जाये चाहे उल्टे-उल्टे छन्द वही रहेगा। प्रथम चरण को अनुलोम क्रम से रखने पर भी चतुर्थ चरण बनता है और विलोम क्रम से भी रखने पर। यही बात द्वितीय तथा तृतीय दोनों पादों के विषय में भी है।

भावपक्ष भी अत्यन्त मनोरम है। यहाँ पर रामकथा की उज्ज्वल भागीरथी तथा कृष्णकथा की विलोमवर्णा नवश्यामला कलिन्दकन्यका है। सूर्यकवि की सरस्वती भी मिलकर इसे त्रिवेणी-प्रयाग बना रही है। (द्रष्टव्य टीका की प्रस्तावना, ४) भावुकता तथा कोमलवर्णविन्यास १४, २१, २२, ३१, ३५ तथा ३६वें श्लोकों में विशेष मर्मस्पर्शी है। रामपक्ष के अर्थ की अपेक्षा कृष्णपक्षीय अर्थ अधिक मनोरम बन पाया है। जानकी के पारमार्थिक स्वरूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह लक्ष्मी के रूप में कमलों अथवा भगवान् विष्णु के चरणकमलों को ही अपना आश्रय समझती है, वही कमलासन ब्रह्मा की भी पूर्णता को जानती है, न कि ब्रह्मा उनकी। वही भगवती लक्ष्मी अपने पूर्णांश में अवतरित हुई भगवान् विष्णु के साथ। यही राम और सीता हैं। कृष्णपक्ष में कोई गोपी नन्द से कहती है, 'हे गृहाधीश नन्द, यह राधा तो कृष्ण की कमनीयता—माररूपता—है। वह तो यदुवंशी अवतारधारी कृष्ण में अनुरक्त साक्षात् माँ लक्ष्मी है, अथवा महाराज, आप चाहे जो कुछ भी कहें यह राधा

आपके कृष्ण में अनुरक्त नहीं है। छन्द दर्शनीय है। यमक में भी श्लेष का आनन्द अत्यन्त विचित्रता उत्पन्न करता है। वार्तालाप की स्वाभाविकता प्रशंसनीय है।

वेद या पद्मसदनं साधारावततार मा !
मारता तव राधा सा नन्द सद्मप यादवे ॥ १४ ॥

उपर्युक्त संदर्भों से यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रकाव्य में यमककाव्य का और यमककाव्य में विलोमकाव्य का उसमें भी भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से रामकृष्णविलोमकाव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायः ऐसे काव्य में स्वाभाविकता, सहज प्रवाह, कृत्रिमता, नीरसता और श्रमसाध्यता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि काव्य के विरोधी गुणों से संयुक्त होने के कारण इनको विलोमकाव्य कहा जाता है, किन्तु ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः यह विलोमता कलागत है, विषय या भावगत नहीं। दण्डी इसे प्रतिलोम संज्ञा देते हैं—

आवृत्तिः प्रतिलोम्येन पदार्धश्लोकगोचरा।
यमकं प्रतिलोमत्वात् प्रतिलोममिति स्मृतम् ॥ (काव्यादर्श ३।७३॥)

नागौर, राजस्थान के स्वामी लक्ष्मणशास्त्री भी एक चित्रकवि हैं जिन्होंने एक नये प्रकार के चित्रकाव्य का आविर्भाव किया है। इनका साहित्य विपुल है। इनकी छः रचनाओं की अनेक आवृत्तियाँ संवत् २०११ तक प्रकाशित हो चुकी है। इनका विशालकाय ग्रन्थ श्रीविष्णुचरितामृतम् है जिसमें विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र के १०७ श्लकों को सैंतीस सर्गों के ८५६ श्लोकों में बद्ध किया गया है। इसी प्रकार 'श्रीरामविवाहः' काव्य में भरत और शत्रुघ्न के नाना के घर जाने तक का वृत्तान्त है। इसमें तीन सर्ग तथा कुल ५९ श्लोक हैं। श्रीहरिद्वादशाक्षरी-स्तोत्रम् तथा श्रीविष्णुचतुर्विंशत्यवतारस्तोत्रम् भी इसी स्तर के हैं। 'श्रीराम-विवाह' में अन्त्यादि यमक है। श्रीरामपादयुगलीस्तव में विश्वामित्र प्रणीत श्रीरामदुर्गस्तोत्र के क्रमशः एक-एक अक्षर से प्रत्येक छन्द का प्रारम्भ तथा अन्त किया गया है। इसमें अन्त के तीन परिचयात्मक छन्दों के अतिरिक्त २४ छन्द हैं। एक उदाहरण उपस्थित है—

मन्दाकिनी रजतशुभ्रजला स्वजन्म हालाहलोपमितपापहरप्रवाहा।
विन्दत्यथ स्म यत एव पदी पुरो विष्णुः साह्वयं गतवतीति यदुत्पतिष्णुः।

इनके श्रीहरिस्तोत्रम् के १० श्लोकों के प्रथम चरणों में क्रमशः धातुगण, द्वितीय में लकार, तृतीय में प्रक्रिया तथा प्रथम तीन श्लकों के चतुर्थ में पुरुष एवं शेष सात में दिनों का नाम गिनाने के साथ-साथ श्रीहरि की स्तुति भी है।

चित्ररचना का कारण--भारत में इस प्रकार के काव्यकारों की कमी नहीं। अभी कुछ ही वर्ष हुए कविवर श्री रामरूप पाठक ने 'चित्रकाव्यकौतुक' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया है जिस पर लेखक को कई सहस्र का पुरस्कार भी मिला है।

इस प्रकार की रचना का सर्वप्रमुख कारण है विलक्षण क्षमतासम्पन्न संस्कृत भाषा। निःसन्देह विश्व की भाषाओं में संस्कृत जैसी सक्षम भाषा यदि अलभ्य नहीं तो अतिदुष्प्राप्य अवश्य है। विख्यात भारतविद्याविद् ए० बी० कीथ ने भी संस्कृत भाषा की इस क्षमता को स्वीकार किया है। देखिये—Keith : *Hist. Skt. Lit.* pp. 137–8. इन्होंने ही १३९ पृष्ठ पर लिअन ऑफ मेडीना के एक शोकगीत का उल्लेख किया है जिसे इटालियन तथा हिब्रू में पढ़ा जा सकता है। इस अर्थ में इस दिशा में संस्कृत भाषा अद्वितीय है।

इसका दूसरा कारण है भारतीयों की विलक्षण धारणाशक्ति और अद्भुत श्रम की क्षमता। सर्वत्र प्रतिभा और नित्य नवनवोन्मेष भाव-क्षेत्र में भले ही कम हो, शब्दचयन के क्षेत्र में तो अद्वितीय है। डा० सुभद्रा झा ने विण्टरनिट्ज महोदय के आश्चर्य का बड़ा सुन्दर अनुवाद किया है। देखिये—*Hist. of Ind. Lit.*, Vol. III, p. 88.

चित्रकाव्य तथा आलोचना सम्प्रदाय--संस्कृत भाषा की इस अपूर्व क्षमता तथा चित्रकाव्य के प्रचुर साहित्य के होने पर भी भारतीय समीक्षा-शास्त्रियों ने इसे विशेष महत्त्व नहीं दिया। मम्मट जैसे ध्वनिवादी आचार्यों ने इसे अवरकोटि में रखा है—"शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम्।" इसका एकमात्र कारण यही है कि प्रयत्नसाध्य होने से चित्रात्मकता तो पर्याप्त होती है किन्तु रसात्मकता, माधुर्य, स्वाभाविकता आदि की कमी हो जाने से सहृदय इधर आकृष्ट नहीं होता। रसवादी विश्वनाथ ने चित्रकाव्य को काव्य के बीच विद्यमान गाँठ, बाधा, मानकर इसका विवेचन ही क्रमप्राप्त स्थान पर नहीं किया। वह कहते हैं—"काव्यान्तरगड्डुतया तु नेह प्रपञ्च्यते" (सा० द०

चौखम्बा प्रकाशन पृ० ५८८)। यही दशा दण्डी की भी है। आलङ्कारिकों के सम्प्रदाय का होने पर भी उन्होंने इसे "नैकान्तमधुर"—पूर्णतः मधुर नहीं है यह माना है (काव्यादर्श १।६१)। महाराज भोज ने चित्रकाव्य को निरवधि मानते हुए इस पर दुष्करता, कठोरता और दुर्बोधता का दोषारोपण किया है—

दुष्करत्वात् कठोरत्वात् दुर्बोधत्वाद् विनावधेः।
दिङ्मात्रं दर्शितं चित्रे शेषमूह्यं महात्मभिः॥ (स० कण्ठा० २।१४६।)

आचार्य आनन्दवर्धन पहले से ही उन अलङ्कारों को काव्य में नहीं आने देना चाहते हैं जिनके लिए कवि को सोच-विचार और सश्रम प्रयास करना पड़ता है। (ध्वन्यालोक ३।४३ की वृत्तियाँ)। नीरस काव्य अलङ्कारमय होने पर भी नारीप्रतिमा की भाँति मनोहर नहीं होती। देखिये आर्यासप्तशती—

रतिरीतिवीतवसना प्रियेव शुद्धापि वाङ्मुदे सरसा।
अरसा सालंकृतिरपि न रोचते शालभञ्जीव॥ (१।५४।)

समन्वय—वास्तविकता कुछ विचित्र-सी लगती है। निःसंशय रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य सभी सुन्दर काव्य के लिए समुचित मात्रा में अपेक्षित हैं। कष्ट की बात यह है कि विद्वान् कविगण केवल एक-एक के पीछे ऐसे पड़े कि मधुर-रस विष हो गया, अलंकार भार हो गये, रीति अवरोध हो गई, ध्वनि कोलाहल बन गई, वक्रोक्ति प्रवञ्चना हो गई और औचित्य लोक से उठ ही गया। लोक में नियम बनते हैं, किन्तु उनके अपाय पूर्व से ही मानो निश्चित रहते हैं। एक विशालकाय महाकाव्य में यथोचित मात्रा में मिलकर ये सभी पानकरस अथवा षाडवपाक का आनन्द दे सकते हैं किन्तु एक ही चीज के आधिक्य से या तो वह गुड़ का शीरा हो जायेगा या काढ़ा अथवा मिर्च की घोल, जिससे किसी को भी अरुचि हो सकती है। भारवि और माघ के काव्यों में युद्धप्रकरण में विचित्र चित्रकाव्य का प्रयोग भावों तथा कर्मों का अनुगामी होने से अत्यन्त सटीक घटित हुआ है, किन्तु पञ्चकल्याणचम्पू के रचयिता को क्या कहा जाये जिसमें श्लेष के आधार पर पाँच कथाएँ एक साथ चलती हैं। माघ ने अपने चित्रप्रयोगों का स्पष्टीकरण-सा दिया है—

विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।
श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्दुलम्॥ (शिशु १९।४१।)

चित्रविचित्र व्यूह रचाकर हो रहे युद्धों का वर्णन चित्रविचित्र काव्य द्वारा होना सङ्गत भी है। यहाँ पर भी यदि कई सर्गों में युद्ध और चित्रकाव्य ही रहता तो अस्वाभाविक होने से यह भी नीरस और असङ्गत हो जाता।

सूक्ष्म विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि सारा दोष कवियों का ही नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृतज्ञों का स्तर क्रमशः घटता गया और शनैः-शनैः व्याकरणशास्त्र पर होने वाला परिश्रम समाप्त होने लगा तथा आज के छात्रों की भाँति लोग संस्कृत से विमुख होने लगे। अतः एक विद्वान् के मुख से निकली हुई धाराप्रवाहित सुश्लिष्ट एवं परिष्कृत वाणी को सामान्य लोग नहीं समझ पाते तो उसके लिए विद्वान् निन्दनीय नहीं। अनन्त श्री-विभूषित शङ्कराचार्य स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती ने 'चित्रकाव्यकौतुकम्' की भूमिका में कहा है कि 'अंगूर खट्टे' हैं की भाँति अल्पबुद्धि वालों ने चित्रकाव्य पर दोषारोपण प्रारम्भ कर दिया है। यह उनके लिए है भी नहीं और न वे इसके अधिकारी ही हैं। वस्तुतः—

सत्यं वल्गितमस्ति तत्र भवतोऽशक्तस्य कस्यापि ते
द्राक्षामम्लतरां वदन्ति कृपणाः श्रान्ताः परास्तोद्यमाः।
शाब्दे ब्रह्मणि साधिकारवचसां क्लिष्टक्रमाभ्यासिनां
बन्धाली विजरीहरीति सुभगा विद्येश्वराणां मुदे ॥ ६ ॥

चित्रादिकाव्य के अधिकारी विद्वान् लोग ही हैं इस तथ्य की पुष्टि काव्यशास्त्र के कुछ ग्रन्थों से भी होती है। दोषप्रकरण में जहाँ क्लिष्टता अथवा प्रसन्नता दोष माना गया है वहीं उसका परिहार भी किया गया है। भोज अपने सरस्वती-कण्ठाभरण में कहते हैं कि अविद्वान्, अशिक्षित स्त्रियों तथा बच्चों के बीच में समझे जाने वाले अर्थों से युक्त वाणी को प्रसन्नवाणी कहते हैं और इससे विपरीत को अप्रसन्नता दोष से युक्त, किन्तु चित्रादि काव्य में वह भी दोष नहीं है—

अविद्वदङ्गनाबालप्रसिद्धार्थं प्रसादवत्।
विपर्ययोऽस्याप्रसन्नं चित्रादौ तन्न दुष्यति ॥ (१।१२९।)

इसी प्रकार सोपक्रम दोष का निरूपण करते समय चित्रकाव्य में उसकी निर्दोषता सिद्ध की गई है। भोज का मत है कि यदि कवि कुशल हो तो सभी दोष, दोषविभाग से निकल कर गुणसमुदाय में मिल जायें—

विरोधः सकलेष्वेव कदाचित् कविकौशलात्।
उत्क्रम्य दोषगणनां गुणवीथीं विगाहते ॥ (वही १।१५६।)

मम्मट की भाँति विश्वनाथ ने भी साहित्यदर्पण में निहतार्थता, प्रयुक्तत्व, अप्रतीतत्व आदि को श्लेषकाव्य तथा विद्वानों के बीच गुण ही माना है—

स्यातामदोषौ श्लेषादौ निहतार्थाप्रयुक्तते ॥ १७ ॥
गुणः स्यादप्रतीतत्वं ज्ञत्वं चेद्वक्तृवाच्ययोः ॥ १८ ॥

फिर जहाँ श्लेष, यमक आदि का प्रयोग हो और कवि तथा अध्येता दोनों ही विद्वान हों वहाँ न तो दोषता का प्रश्न उठता है और न लाञ्छन का। सीधी-सी बात है कि दो अंग्रेज आंग्लभाषा में, दो फ्रांसीसी फ्रेञ्च में ऐसे ही विभिन्न भाषा-भाषी विभिन्न-विभिन्न भाषाओं में वार्तालाप करें तो आवश्यक नहीं कि सबकी बात न समझने वाला उनको लोकप्रिय भाषा न बोलने का दोषी कहे।

उपसंहार—संस्कृत साहित्य में विद्यमान विशाल चित्रसाहित्य, उसकी निरन्तर प्रगति और अक्षुण्णता, सहृदयों के स्तर तथा कवियों की अद्भुत क्षमता को देखकर किसी भी विज्ञ को आश्चर्य होगा। विश्व की समृद्ध भाषाओं में किसी एक में उतने महाकाव्य सामान्य साहित्यिक भाषा में सम्भवतः नहीं होंगे जितने संस्कृत के चित्रकाव्य में होंगे। न जाने कितना विशाल भारतभारती का भाण्डार विधर्मियों ने भस्म कर दिया, कितना सुरक्षित न रह पाने से विनष्ट हो गया, कितना विदेशों को चला गया, कितना किसी के घर की दीवालों के खाने में घुट रहा है, कितना अज्ञात है और न जाने कितना देश के विभिन्न पुस्तकालयों में पड़ा-पड़ा अन्तिम सांस ले रहा है। भारत की उच्च संस्कृत संस्थाओं के अधिकारी, समय एवं साधनसम्पन्न मनीषियों का यह पावन कर्तव्य है कि वे उस निधि को प्रकाश में लायें और लोक-कल्याण करें।

वैशाखी पूर्णिमा
सं० २०२७

—कामेश्वरनाथ मिश्र

श्लोकानुक्रमणिका

	पृ०		पृ०
व.पिताल‍विभागेन	२७	नागोपगोऽसि	१६
का तापघ्नी	४	नासावद्यापत्र	१९
किं तु तोयरसा	२५	नेह वा क्षिपसि	२३
कौशिके त्रिपसि	६	रावणेऽक्षिपतनत्रपा	२९
क्षताय मा यत्र	३४	लङ्कायना नित्यगमा	८
गाधिजाधरवैरा	९	लङ्का रङ्कागाराध्यासँ	३६
चिरं विरंचिर्न	२	लम्बाधरोरु	७
तं भुसुतामुक्ति	१	वनान्तयानस्वणु	२४
ततान दाम प्रमदा	१७	वा दिदेश द्विसीतायँ	३२
तयातितारस्वनयागतं	२१	वायुजोऽनुमतो	३३
तामसीत्यजति	३	वेद या पद्मसदनं	१४
तामितो मत्तसूत्रामा	१८	शङ्कावज्ञानुत्त्व	३१
तारके रिपुराप	३५	शवेविदाचित्रकुरङ्गा	२२
तावदेव दया देवे	१०	शौवतो हननेऽरोधी	१५
तीव्रगोरन्वयत्रार्यो	१३	श्रीमतो मध्यमतोदि	५
ते सभा प्रकपिवर्ण	२८	संभावितं भिक्षु	२०
दैवे योगे सेवादानं	३०	स नतातपहा	२६
न वेद यामक्षरभास	१२	सभास्वये भग्नमनेन	११

दैवज्ञश्रीसूर्य-कवि-विरचितं

रामकृष्णविलोमकाव्यम्

स्वोपज्ञटीकासहित 'प्रकाश' हिन्दी-व्याख्योपेतम्

श्रीमन्मङ्गलमूर्तिमार्तिशमनं नत्वा विदित्वा ततः
शब्दब्रह्म मनोरमं सुगणकज्ञानाधिराजात्मजः ।
यद्ग्रन्थाध्ययनैर्विनेयनिवहोऽप्याचार्यचर्यामगात्
सोऽहं सूर्यकविर्विलोमरचनं काव्यं करोम्यद्भुतम् ॥

छन्दःपूरणमुत्क्रमक्रमविधौ साकाङ्क्षता तत्पदे-
ष्वारम्भाच्चरिते क्रमोऽपि सुतरामेतत्त्रयं दुर्गमम् ।
एवं सत्यपि मन्मतिः कियदपि प्रागल्भ्यमालम्बते
तत्सर्वं गुणिनः क्षमन्तु यदहो यूयं श्रमज्ञाः स्वयम् ॥

कदाचिदपि संतरेत् कृतिपरो नरो नीरधिं कथंचिदपि धावति प्रवरधाम धाराध्वनिः ।
ऋतेऽप्यतिविशारदा प्रचुरशारदानुग्रहं विलोमकविताकृतौ सुकविधीरधारा भवेत् ॥

भागीरथी रामकथातिरम्या कालिन्दिका कृष्णकथा मनोज्ञा ।
सरस्वती सूर्यकवेस्तृतीया स्नातुं प्रयागेऽत्र मतिः कवीनाम् ॥
समाक्षराङ्घ्रिर्विषमाक्षरार्धा द्वेधा भवेद्व्यस्तकवित्वसीमा ।
समानभिन्नार्थतया द्विधाद्या भिन्नाक्षरार्था च भवेद् द्वितीया ॥

अथ कवित्वपरिभाषा पिङ्गलादौ कथिता—

'अध्याहारो यत्तदोर्वा क्रियायाः पादाद्यन्ते वा विसर्गोऽविसर्गः ।
कुत्राप्यूह्या लक्षणा व्यञ्जना वा विद्यादेतां चित्रकाव्यानुपूर्वाम् ॥'

नैकाक्षराणि छन्दोक्तिर्नाप्रसिद्धाभिधानकम् ।
नैव व्याकरणक्लिष्टं द्राक्षापाकोऽत्र केवलम् ॥

अथ ययोः कथाप्रसङ्गस्तावेवेष्टदेवतात्वेन प्रणमति—

तं भूसुतामुक्तिमुदारहासं वन्दे यतो भव्यभवं दयाश्रीः ।
श्रीयादवं भव्यभतोयदेवं संहारदामुक्तिमुतासुभूतम् ॥ १ ॥

तं भूसुतामुक्तिं वन्दे । भूसुताया रावणरक्षितायाः सीताया मुक्तिर्मोक्षणं यस्मात्तं राघवं वन्दे । नमस्करोमीत्यर्थः । किंभूतम् । उदारहासम् । उदारो गम्भीरो हासो यस्यासौ तथा । उद्वेगनिमित्तेषु सर्वानर्थेषु प्राप्तेष्वप्यनुद्विग्नमित्यर्थः । पुनः किंभूतम् । भव्यभवम् । भव्यः पवित्रो भवोऽवतारो यस्यासौ तथा । अथ कथम् । यतो दया श्रीश्च बभूवेत्यध्याहारः । दया भूतदया श्रीश्च शोभा च तयोर्निदानमित्यर्थः । एतद्रामपक्षे ॥ कृष्णपक्षे तु—श्रीयादवं वन्दे । किम्भूतम् । भव्यभतोयदेवम् । भव्या उत्तमा भा दीप्तिर्यस्यासौ सूर्यः । तथा तोयशब्देन चन्द्रः । जलात्मकत्वात् । तयोर्द्योतनाद्देवः । सूर्याचन्द्रमसोरपि प्रकाशक इत्यर्थः । तदुक्तम्—'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥' अथ किंभूतं यादवम् । संहारदामुक्तिम् । संहारोऽनर्थस्तं ददातीति तथाविधा पूतना तस्या मुक्तिर्मोक्षो यस्मात्स तथा तम् । पुनः किंभूतम् । उत प्रत्युत असुभूतम् । सर्वत्र प्राणरूपेणावस्थितमित्यर्थः । अथवा प्राणनं जीवनं तद्रूपं चैतन्यस्वरूपम् । तदुक्तम्—'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः' इत्यादि । पूतनायै मुक्तिं दातुमन्तर्यामित्वेन स्वयमेव प्रेरकोऽभूदित्युक्तम् ॥ १ ॥

रामपक्ष में—पृथ्वी-पुत्री जानकी को रावण के बन्धन से मुक्त कराने वाले, गम्भीर हँसी वाले तथा पवित्र अवतारों से समन्वित उस राम की वन्दना करता हूँ जिनसे प्राणियों पर दया और शोभा का आविर्भाव होता है ।

कृष्णपक्ष में—उत्तम दीप्ति वाले सूर्य तथा जलात्मक चन्द्रमा के भी प्रकाशक, मृत्यु देने वाली पूतना के भी मोक्ष के कारणभूत और सर्वत्र प्राणतत्त्व के रूप में स्थित अथवा चैतन्य स्वरूप, श्री रूप तथा सम्पत्ति से संयुक्त यदुवंशी कृष्ण की वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

ननु देहवतोऽपि रामादेः कथमन्तर्यामित्वमित्याशङ्क्य तुल्याचरयेन्द्रवज्रयाह—

चिरं विरंचिर्न चिरं विरंचिः साकारता सत्यसतारका सा ।
साकारता सत्यसतारका सा चिरं विरंचिर्न चिरं विरंचिः ॥२॥

विरंचिर्ब्रह्मा द्विपरार्धावसानं यावत्सर्वभूतापेक्षया चिरं तिष्ठतीति प्रथमम् । अपरं तु 'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिन' इति श्रवणान्न चिरं विरंचिरिति ज्ञायते । तस्यायुषः परिमितत्वात् । अथ साकारता सत्यसतारकास्ति । सेति तच्छब्देन रामस्य या साकारता सत्यसतारका । तारकेण सह वर्तमाना सतारका । सत्या सती सतारका सत्यसतारका । सत्यमबाधितं विज्ञानमयं तारकं यद्ब्रह्म तद्रूपेत्यर्थः । रामपक्षे एतत् ॥ कृष्णपक्षे तु—साकारतासत्यसतारकास्ति । या कृष्णरूपिणी साकारता सा सती सर्वदैव वर्तमाना । नित्येत्यर्थः । किंभूता । असतारका । तारकाभिः सह वर्तमानं सतारकं व्योम, तन्न विद्यते यस्याः सा असतारका । व्योमापि यस्यां लीयते इतः परं नित्यत्वं किं वर्णनीयमित्यर्थः । चिरं विरंचिरित्यादि पूर्ववत् ॥ २ ॥

रामपक्ष में—दीर्घकाल तक स्थित रहने वाले ब्रह्मा भी जिसकी तुलना में अधिक समय तक स्थायी नहीं रह पाते अर्थात् जिसके समक्ष ब्रह्मा का भी समय नगण्य है, वह राम की सगुणस्वरूपता नित्य अथवा सचमुच तारक ब्रह्मरूपिणी है ।

कृष्णपक्ष में—कृष्ण की जो साकारता है—सगुणरूपता है वह सदा वर्तमान है—सत्य ही है—जिसमें तारों-नक्षत्रों-से युक्त रहने वाला आकाश भी कहीं का नहीं रहता अर्थात् अपेक्षाकृत बहुत छोटा होने से जिसमें विलीन हो जाता है और चिरकाल तक-दो परार्धों तक—चिरस्थायी ब्रह्मा भी जिसकी दृष्टि से चिरस्थायी नहीं रहते ।

नोट—प्रस्तुत छन्द में तुल्याक्षरता का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर है । प्रथम एवं द्वितीय चरण ही व्युत्क्रम से चतुर्थ तथा तृतीय चरणों के रूप में हैं । यहाँ विचित्रता तो यह है कि चाहे इस ग्रन्थ के अन्य छन्दों की भाँति द्वितीय चरण के अन्तिम शब्द से प्रथम पाद के प्रथम वर्ण तक विलोम पाठ किया जाय तो भी तृतीय और चतुर्थ पाद बनते हैं और चाहे प्रथम तथा द्वितीय चरण अनुलोम क्रम से ही रखे जायें तो भी क्रमशः चतुर्थ एवं तृतीय चरण बनते हैं, उस पर भी विशेषता यह कि सभी स्थानों पर अर्थ संगत बैठता है ॥ २ ॥

अथ रामकृष्णाभ्यां यां मायामवष्टभ्य साकारता स्वीकृता तस्याः स्वरूपं समाचरया रथोद्धतयाह—

तामसीत्यसति सत्यसीमता माययाक्षमसमक्षयायमा ।
माययाक्षमसमक्षयायमा तामसीत्यसति सत्यसीमता ॥ ३ ॥

असति सत्यसीमता तामसीति । असति शुक्तिकारजतवदसत्ये प्रपञ्चे सत्यसीमता सत्यत्वमर्यादा तामसी मायेति । अथास्या असत्यत्वं कार्यवशादनुभूयत इत्याह—माययेति । यया मायया कृत्वा मा लक्ष्मीः अयमा न विद्यते यमो नियमो यस्याः सा तथा । योग्येऽयोग्ये वा कुत्र स्थातव्यं कियत्कालं स्थातव्यमिति क्षणभङ्गुराया लक्ष्म्या यमो नियमो नास्ति । उत्तरक्षणे बाधदर्शनाक्रमरूपतेत्यर्थः । कथंभूतया यया । अक्षमसमक्षया । न क्षमम् अक्षमं समक्षं यस्याः सा तथा । तस्या मायायाः स्वरूपे विचार्यमाणे समक्षत्वं न प्राप्नोति प्रेक्षणेनैव नश्यतीत्युक्तत्वात् । यतः परमात्मा ज्ञानरूपो माया त्वज्ञानरूपा सा कथं ब्रह्मसमक्षतां याति । यतो ज्ञानमज्ञानस्यैव घातकमित्यर्थः । एवमुभयत्रापि सममिति समाक्षरपदद्वयम् ॥

दोनों पक्षों में—(जिसका अवलम्ब लेकर राम और कृष्ण साकार होते हैं, उसको) सीप में मोती की भाँति असत्य प्रपञ्च को सत्य की चरम सीमा सी आभासित कराने वाली तमोगुणवती अथवा अन्धकारिणी माया कहते हैं । सामने ठहरने में असमर्थ उसी माया के कारण मां-लक्ष्मी का (किसी निश्चित स्थान पर निश्चित समय तक निवास का) कोई नियम ही नहीं बन सका ।

विशेष—इस छन्द की भी विशेषतायें द्वितीय छन्द सी ही हैं । अन्तर यही है कि यहाँ कृष्ण से सम्बद्ध पंक्ति का भी अर्थ राम से सम्बद्ध अर्थ से अभिन्न है, जब कि द्वितीय छन्द में अर्थ दोनों सन्दर्भों में भिन्न-भिन्न थे ॥ ३ ॥

एवमविद्यायाः स्वरूपं निरूप्येदानीं विद्यारूपं विषमाक्षरया शालिन्याह—

का तापघ्नी तारकाद्या विपापा त्रेधा विद्या नोष्णकृत्यं निवासे ।
सेवा नित्यं कृष्णनोद्या विधात्रे पापाविद्याकारताघ्नी पताका ॥४॥

अत्र त्रिविधसंसारतापघ्नी कास्तीति विचार्यमाणे त्रेधा विद्यास्तीति । त्रिःप्रकारा त्रेधा ऋग्यजुःसामात्मिका । ननु तर्हि न कर्मकाण्डं विद्याशब्दव्यपदेश्यम् । 'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह' इत्याद्युक्तत्वादित्याशङ्कयाह । किंभूता त्रेधा विद्या । तारकाद्या । तारकं परं ब्रह्म श्रीरामाख्यमाद्यं श्रेष्ठत्वान्निरूपणीयत्वेन प्राप्तं यस्याः सा तथा । उपनिषद्विद्यात्मिकेत्यर्थः । पुनः किंभूता । विपापा

विगतं पापमज्ञानं यया सा तथा। अथ तस्याः पापोपशामकत्वे दृष्टान्तमाह— निवासेनोष्णकृत्यमिति। नितरां वासो यस्मिन्निति निवासः शीतलच्छायाद्युपस्कृतं गृहं तस्मिन्नुष्णकृत्यं संतापभवनं नास्ति। तद्वद्वेदार्थपरिशीलनेन त्रिविधतापोन्मूलनमित्यर्थः। रामपक्षे चैतज्ज्ञेयम्॥ कृष्णपक्षे तु—कृष्णभक्तिसहकृतैव विद्या अज्ञाननाशकर्त्रीत्याह—सेवा नित्यमिति। विधात्रेऽनुष्ठात्रेऽर्जुनाय ब्रह्मणे वा कृष्णनोद्या नित्यं सेवा पापाविद्याकारताघ्नी भवति। कृष्णेन नोद्या प्रेर्यमाणा नित्यं सेवा अनन्यभक्तिः सा पापं दुःखं तन्मूलमविद्याकारोऽज्ञानं तदुभयमपि नाशयति। तदुक्तं भगवद्गीतायाम्—'भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥' इति। अनन्यभक्तिरेव कृष्णसाक्षात्कारे निमित्तमिति सदृष्टान्तमाह—किंभूता सेवा। पताका। पताकेव पताका। यथा गरुडलाञ्छनाङ्किता कृष्णध्वजपताका दृष्टमात्रैव आगतः कृष्ण इति साक्षात्कारं व्यनक्ति तद्वदनन्यभक्तिरपीत्यर्थः॥ ४॥

रामपक्ष में—संसार के समस्त सन्तापों को विनष्ट करने वाली कौन है? (ऐसा विचार करने पर स्पष्ट होता है कि) तारक ब्रह्मस्वरूप श्रीराम नाम की श्रेष्ठता का निरूपण करने वाली उपनिषद्विद्यात्मिका, अज्ञान को दूर करने वाली ऋग्यजुःसामात्मिका विद्या ही उसे दूर करने वाली है। जिस प्रकार ठीक ढंग से जिसमें वास किया जाता है, उस (शीतल छाया आदि से समन्वित) गृह में ग्रीष्म का प्रभाव नहीं पड़ता उसी प्रकार (वेदार्थपरिशीलन से तापत्रय का असर नहीं पड़ता।)

कृष्णपक्ष में—अर्जुन अथवा ब्रह्मा को बताई गई, कृष्ण के द्वारा प्रेरित नित्य सेवा अर्थात् अनन्यभक्ति, (गरुड के चिह्न से युक्त होने के कारण कृष्ण के आगमन की सूचना देने वाली उनकी) पताका की भाँति दुःख तथा (उसकी जड़) अज्ञान (दोनों) को नष्ट करती है॥ ४॥

अथ प्रथमं माया परमात्मनः समक्षं स्थातुं न शक्नोतीति स्वरूपानुसंधानेन मायायास्तिरस्कार इत्युक्तम्। तत्रात्मज्ञाने महानायासः। श्रीरामसेवया तु विद्याप्राप्तिस्तया तत्कालमेवाज्ञाननिरास इति विषमाक्षरयेन्द्रवज्रयाह—

श्रीमतो मध्यमतोदि येन धीरोऽनिशं वश्यवतीवराद्वा।
द्वारावतीवश्यवशं निरोधी नयेदितो मध्यमतोऽमरा श्रीः॥ ५॥

वा इत्यथवा स पुमान्धीरः येनानिशं श्रीरामतः मध्यमतोदि श्रीरामतो निमित्तभूतान्मध्यं मध्येऽवभासमानं प्रपञ्चाख्यमतोदि नाशितम् । स एव धीरः इत्यर्थः । किंभूताच्छ्रीरामतः । वश्यवतीवरात् । वशं नेतुं समर्थं वश्यं रूपं तद्वती जानकी तस्या वरात् । भर्तुरित्यर्थः॥ कृष्णपक्षे तु—निरोधी पुमान्मध्यं नु चिदचिद्ग्रन्थिस्वरूपं मनः इतः प्रपञ्चाद्द्वारावतीवश्यवशं नयेत् । वायुनिरोधीन्द्रियनिरोधी च पुमान् द्वारावत्या वश्यस्तत्रासक्तः कृष्णस्तत्र वशं नयेत् । योगेन वैराग्येण वा चित्तं निरुध्य श्रीकृष्ण एव एवं वशं नयेदित्यर्थः । तत्र किं भवतीत्याह—अतोऽस्मादुपायाच्छ्रीर्मोक्षलक्ष्मीरमरा स्थिरा भवति । अन्यथा निरोधवानपि विघ्नैरभिभूयत इत्यर्थः । उक्तं च—'तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्भ्रश्यन्ति मार्गात्' इत्यादि ॥ ५ ॥

रामपक्ष में—अथवा वही पुरुष धीर है जिसके द्वारा अहर्निश वश में कर लेने वाली रूप वाली भगवती सीता के वर श्रीराम के कारण (भूत एवं भविष्य में अज्ञात किन्तु केवल) मध्य-वर्तमान में ही प्रतीत होने वाला प्रपञ्चात्मक विश्व समाप्त कर दिया गया है ।

कृष्णपक्ष में—प्राणों का या इन्द्रियों का नियमन करने वाला पुरुष इस प्रपञ्चात्मक विश्व से हटा कर (चित् एवं अचित् के) मध्यवर्त्ती मन को द्वारका में आसक्त कृष्ण के वश में ले जाये । इससे मोक्ष लक्ष्मी अचल होती है ॥ ५ ॥

अथ कथाप्रारम्भः—तत्र विश्वामित्रः स्वयज्ञसंरक्षणार्थं रामं याचितुं दशरथं प्रत्यगादिति विषमाक्षरया रथोद्धतयाह—

कौशिके त्रितपसि क्षरव्रती योऽददाद्द्वितनयस्वमातुरम् ।
रन्तुमास्वयन तद्विदादयोऽतीव्ररक्षसि पतत्रिकेशिकौ ॥ ६ ॥

यः क्षरव्रती द्वितनयस्वं कौशिकेऽददात् । क्षरेषु सर्वेषु भूतेषु व्रतमभीप्सितपूरणं येन तथाविधो दशरथो द्वयोस्तनययोः समाहारो द्वितनयं तदेव स्वं धनं कौशिके विश्वामित्रे दत्तवान् । ननु प्राणादपि प्रियतमं पुत्राख्यं धनं विश्वामित्रार्थं केन निर्बन्धेन दत्तवानित्याशङ्कयाह—किंभूते विश्वामित्रे । त्रितपसि त्रिःप्रकारकं त्रिगुणात्मकं प्रसादक्षोभसमर्थं तपो यस्य स तथा । तस्मिन्किंभूतं द्वितनयस्वम् । आतुरम् । पित्रोर्वियोगादित्यर्थः ॥ कृष्णपक्षे तु—श्रीशुकः परीक्षितं प्रति वक्ष्यमाणं कृष्णकथोद्देशमनुवदति—भो आस्वयन, आ समन्तात्सुष्ठु अयनं गतिः

परमार्थगतिर्यस्य तथाविधः परीक्षित्। तद्विस्कृष्णोऽतीव्ररक्षसि न विद्यते तीव्रं रक्षः यस्मात्तदतीव्ररक्षस्तस्मिन्पूतनाख्ये। तथा पतत्रिकेशिकौ पतत्री पक्षी बकासुरः, केशी हयरूपी दैत्यः, तयोः कुः पार्थिवशरीरं तस्मिन्नादयोऽस्ति। आसमन्ताद्दया कृपा यस्य स तथा। पूतनाबककेशिशरीराणि कृपयैवातारयदित्यर्थः। किं कर्तुम्।। रन्तुं क्रीडां कर्तुम्। क्रीडाच्छलेनेत्यर्थः॥ ६॥

रामपक्ष में—(सभी प्राणियों के अभीष्ट की पूर्ति का व्रत लेने वाले उन दशरथ जी ने कायिक, वाचिक एवं मानस तीन प्रकार की अथवा त्रिगुणात्मिका तपस्या करने वाले विश्वामित्र को (स्वजन वियोग से) व्याकुल दो पुत्र रूपी धन प्रदान किया।

कृष्णपक्ष में—(श्री शुकदेव जी परीक्षित् से कहते हैं) हे सर्वत्र सुन्दर पारमार्थिक गति वाले (आस्वायन = आ + सु + अयन) परीक्षित जी! सर्वज्ञ कृष्ण जी ने, जिससे अधिक उग्र कोई दूसरा राक्षस नहीं हो सकता उस पूतना पर, पक्षी रूपधारी बकासुर तथा अश्व-रूप केशी के कु अर्थात् पार्थिव शरीरों पर क्रीडा के बहाने पूर्ण दया की॥ ६॥

अथ विश्वामित्रेण सह रामं प्रस्थितमाकर्ण्य राक्षसास्ताटकां प्रेषयामासुरित्याह—

लम्बाधरोरु त्रयलम्बनासे त्वं याहि याहि क्षरमागताज्ञा।
ज्ञातागमा रक्ष हि याहि या त्वं सेना बलं यत्र रुरोध बालम्॥७॥

भो लम्बाधरोरु, त्वं क्षरं याहि। अधरश्च ऊरू च अधरोरु लम्बमधरोरु यस्याः सा लम्बाधरोरूः तस्याः संबोधनम्। तथा किंभूते। त्रयलम्बनासे। त्रये लोकत्रये लम्बा नासा यस्याः सा तथाविधे। त्वं क्षरं नाशयोग्यं मानुषदेहं रामं याहि याहि। आदरे वीप्सितद्विरुक्तिः। किंभूता त्वम्। आगताज्ञा। आगता प्राप्ता आज्ञा रावणाज्ञा यया तथा॥ कृष्णपक्षे—श्रीकृष्णं गोकुलस्थितमाकर्ण्य कंसः पूतनामाज्ञापयति—हे पूतने, त्वं तत्र याहि। बलं पुरुषार्थं रक्ष। तत्र क्वेत्याह—यत्र सेना बालं रुरोध। इनेन स्वामिना नन्देन सहवर्तमाना यशोदा बालं कृष्णं रुरोध रुद्धा आच्छाद्य स्थितवती तत्रेत्यर्थः। कुत एतावन्तं विश्वासं कृतवतीत्याह—हीति निश्चयेन। ज्ञातागमा ज्ञात आगमो यया सा। कोऽपि बालघातार्थम् आयास्यतीति संभावयन्तीत्यर्थः॥ ७॥

रामपक्ष में—(विश्वामित्र के साथ राम का चलना सुनकर राक्षस लोग ताटका से कहते हैं—) हे लम्बे ओष्ठ एवं जघनों वाली, हे तीनों लोकों में सबसे लम्बी नासिका वाली ताटके! तुम्हारे लिए (रावण) की आज्ञा आ चुकी है, अतः तुम क्षर अर्थात् नाशयोग्य मानुष शरीरधारी राम के पास जाओ, जाओ।

कृष्णपक्ष में—(श्री कृष्ण को गोकुल में सुनकर कंस पूतना से कहता है)- तुम वहाँ जाओ और पुरुषार्थ की रक्षा करो, जहाँ पर निश्चय ही किसी बालघाती के आने की शंका में अपने पति के साथ यशोदा (स + इना = स्वामिना) बालक कृष्ण को छिपा कर रहती है ॥ ७ ॥

अथ ताटकया सह शूर्पणखापि समागतेत्याह—

लङ्कायना नित्यगमा धवाशा साकं तयानुन्नयमानुकारा।
राकानुमा यन्नु यातकंसा शावाधमागत्य निनाय कालम् ॥८॥

लङ्कायना तया साकं नित्यगमाभूत्। लङ्कायामयनं गतिर्यस्याः सा शूर्पणखा तया ताटकया साकं नित्यगमाभूत्। नित्यं गच्छतीति नित्यगमा। पर्यटनासक्ताभूदित्यर्थः। अनुन्नयमानुकारा। न नुन्नः प्रेरितोऽनुन्नः स्वतः प्रवृत्त एवंविधो यो यमः कृतान्तस्तद्वदनुकारो यस्याः सा। निष्कृपेत्यर्थः। किंभूता। धवाशा धवविषयिणी आशा यस्याः सा तथा। रामं भर्तारमपेक्षमाणा॥ कृष्णपक्षे—शावाधमा आगत्य कालं निनाय। शवप्रियाः शावाः क्रव्यादास्तेष्वधमा बालघातिनी पूतना आगत्य गोकुलं प्राप्य कालं स्वग्रासकं कृष्णं निनाय प्राप्तवती। ननु राक्षसी गोकुलान्तर्गता तत्रत्यैः किं पूर्वं न निषिद्धेत्याह—यद्यतो राकानुमा। राका पूर्णिमा तया अनुमीयते सा। सा प्रथमं राकावदतिसुन्दरं रूपं धृतवती तद्वाच्चिण्येन केनापि गृहान्तर्गमने नाक्षिप्ता। नन्विति निर्धारणे। यातकंसा यातोऽन्तरितः कंसो यस्याः सा तथा। पुनः कंसेन न दृष्टा। कृष्णग्रस्ता सती विपन्ना इत्यर्थः॥ ८ ॥

रामपक्ष में—लङ्का में विचरण करने वाली और स्वतः प्रवृत्त यमराज के सदृश निष्कृपा शूर्पणखा उस ताटका के साथ पति की कामना से निरन्तर पर्यटन में रत हुई।

कृष्णपक्ष में—शव के प्रेमी राक्षसों में भी अत्यन्त नीच पूतना ने गोकुल में आकर अपने काल कृष्ण को प्राप्त किया। (कोई उसके कपट को जान न

सका) क्योंकि वह पहले पूर्णिमा की भाँति अतीव सुन्दरी थी। किन्तु (आने के पश्चात्) कंस उसके लिये बहुत दूर जा चुका था अर्थात् वह पुनः कंस से मिल न सकी ॥ ८ ॥

अथ विश्वामित्रस्य यागव्यवस्थामनुष्टुबाह—

गाधिजाध्वरवैरा ये तेऽतीता रक्षसा मताः ।
तामसाक्षरतातीते ये रावैरध्वजाधिगाः ॥ ९ ॥

गाधिजो विश्वामित्रस्तस्याध्वरो यागस्तत्र वैरं येषां ते खरदूषणादयस्ते अतीता रामेण ते हताः। देहादिप्रपञ्चमतिक्रम्य गता इत्यर्थः। किंभूताः। रक्षसा रावणेन मताः स्वसंमानेन प्रसिद्धाः ॥ कृष्णपक्षे—पूतनावधमाकर्ण्य कंसेनान्ये बकतृणावर्तादयः प्रेषिता इत्याह—तामसाक्षरतातीते कृष्णे सति ये रावैः प्रेषिता दैत्या ते अध्वजाधिगा आसन्। तामसाहंकारेणासमन्तादुत्पन्ना या क्षरता प्रपञ्चात्मकता ततोऽप्यतीते परब्रह्मरूपे कृष्णे सति दैत्या रावैः कंसनिदेशशब्दैरागतास्तेऽध्वजाधिगा गोकुलमार्गयाने जाता या आधिर्मानसी व्यथा तां गच्छन्तः प्राप्ताः। अहो गोकुलं गत्वा प्रपञ्चातीते कृष्णेऽस्माभिः किं कर्तव्यम्। पूतनावन्मर्तव्यमिति पर्याकुलचित्ता आसन्नित्यर्थः ॥ ९ ॥

रामपक्ष में—राक्षस रावण के अभिमत तथा गाधिपुत्र विश्वामित्र के यज्ञ से वैरभाव रखने वाले खरदूषण आदि थे वे भी चल दिये।

कृष्णपक्ष में—तामस अहंकार से चारों ओर नश्वरता से परे (तामसा + आ + क्षरता + अतीते) कृष्ण के रहते जो राक्षस कंस के आदेश शब्दों के साथ आ रहे थे, उन्होंने मार्ग में उत्पन्न होने वाली बहुत मानसिक व्यथा—आधि प्राप्त की ॥ ९ ॥

अथ मुनिभिः केवलं रामार्पणबुद्ध्या कृतस्य यागस्य प्रशंसामाह—

तावदेव दया देवे यागे यावदवासना ।
नासवादवया गेया वेदे यादवदेवता ॥ १० ॥

देवे रघुनाथे दया कृपा प्रीतिस्तावदेव संभवतीति। यावद्यागेऽवासना यागे क्रियमाणेऽवासना स्वर्गादिभोगप्राप्तये इच्छाराहित्यम्। तस्मात्फलराहित्येन यो यागः स रामप्रीतये भवतीत्यर्थः ॥ कृष्णपक्षे—कृष्णे परब्रह्मस्वरूपतामवधारयन्तो

दैत्याः पुनः परामर्शं चक्रुरित्याह—यादवदेवता कृष्णमूर्तिर्वेदे या उपनिषद्भागे गातुं निरूपयितुं योग्या न तु साक्षात्कारं कर्तुमथवान्येन निरूपयितुं न शक्यते इत्याह—नासवादिति । असुसंबन्धि आसवं प्राणात्मकं शरीरम् । अवेत्युपसर्गोऽवलक्षणत्वद्योतकः । तथा चावलक्षणान्मनुष्यदेहात्सकाशान्नहि निरूपयितुं शक्यते । एवं प्रथमं तस्य निरूपणासंभवे तस्य हननमस्माभिरसंभावितमेवेत्यर्थः । वस्तुतस्तु आसवात् । आसवादिति मदजननवस्तुमात्रोपलक्षणम् । तस्मान्न अवया न ज्ञेया । तन्निमित्तमासवाद्दुर्ज्ञेयेत्यर्थः । अवयेसि अवयायते इत्यवया । 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कः । पश्चाट्टाप् । अवपूर्वको यातिरेतिश्च ज्ञानार्थः ॥ १० ॥

रामपक्ष में—उतनी ही देव रघुनन्दन में कृपा है जितनी की यज्ञ में यजमान की निष्कामता है अर्थात् जो यज्ञ जितनी ही निष्कामता से किया जाता है प्रभु उतना ही उससे प्रसन्न होते हैं ।

कृष्णपक्ष में—(कृष्ण की परब्रह्मस्वरूपता का विवेचन करते हुए दैत्यगण परस्पर कहते हैं) यदुकुलोत्पन्न देव कृष्ण तो वेद और उपनिषदों में वर्णनीय है । सामान्यतया हमारे जैसे मदमत्त लोगों के लिये ज्ञेय नहीं, अथवा असुप्राणों से सम्बद्ध शरीर वालों से पृथक् रूप से निरूपणीय नहीं ॥ १० ॥

अथ स्वयंवरदर्शनार्थं कौशिकेन सह जनकगृहं प्रति गतो रामस्तत्र किं कृतवानित्याह—

सभास्वये भग्नमनेन चापं कीनाशतानद्धरुषा शिलाशैः ।
शैलाशिषारुद्धनताशनाकी पञ्चानने मग्नभये स्वभासः ॥ ११ ॥

अये श्रोतः, अनेन रामेण सभासु शिलाशैः सह चापं सुभग्नम् । सभासु स्थिता शिलावद्दृढा जानकीविषयिण्याशा येषां ते शिलाशाः राजानस्तैः सह चापं भग्नम् । न केवलं चापं भग्नम् । राजानो भग्ना, भग्नमनोरथाः कृता इत्यर्थः । कीनाशतानद्धरुषा कीनाशस्य भावः कीनाशता यमरूपता तया आनद्धोऽभिनिविष्टो रावणस्तस्य रुषा कोपेन । प्राचीनवैरानुबन्धिनिमित्तेन पूर्वं धनुरुद्धर्तुं प्रवृत्तो रावणो धनुषाधः पातितः, परंतु न हत इति रुषा कोपेनेवेत्यर्थः ॥ कृष्णपक्षे—गोवर्धनोद्धरण इन्द्रो लाघवं प्राप्त इत्याह—पञ्चानने नृसिंहे कृष्णे स्वभासः स्वप्रतापान्मग्नभये निःशङ्कं यागं कारयितुं प्रवृत्ते सति शैलाशिषारुद्धनताशनाकी दृष्टः शैलस्य गोवर्धनस्याशिषा अभीष्टपूरणेन रुद्धा रोधं प्रापिता अत एव नता भग्ना

हविर्ग्रहणेच्छा यस्य तथाविधो नाकी स्वर्गाधिपोऽभूदित्यर्थः। 'यो गोवर्धनभूधरं करधृतं लीलाम्बुजन्मायितं कृत्वा सप्तदिनानि नाचलदपाद्गोपांश्च घोरापदः। यश्चक्रे निजशासने हरिविरिञ्च्याखण्डलादीन्सुरानुद्दण्डानपि सोऽवताज्जगदिदं गोपालराजो हरिः॥' इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे ॥ ११ ॥

रामपक्ष में—ओ श्रोताओ, यम के सदृश भयङ्करता से संयुक्त रावण के क्रोध के कारण राम ने सभा में शिला की भाँति (जानकी को पाने की) दृढ़ आशा वाले राजाओं अथवा उनके मनोरथों के साथ धनुष की प्रत्यञ्चा को भी तोड़ दिया।

कृष्णपक्ष में—नरव्याघ्र कृष्ण के अपने प्रताप से निःशङ्क अथवा निर्भय होकर यज्ञ प्रारम्भ करा देने पर, गोवर्धन पर्वत के ही अभीष्ट पूर्ति कर देने से अवरुद्ध हो जाने के कारण स्वर्गाधिपति इन्द्र हवि ग्रहण की इच्छा से निराश हो गये ॥ ११ ॥

अथ स्वयंवरार्थमागतानां राज्ञां वर्णयन्नाह—

न वेद यामक्षरभामसीतां का तारका विष्णुजितेऽविवादे।
देवाविते जिष्णुविकारता का तां सीमभारक्षमयादवेन ॥१२॥

यामक्षरभामसीतां लोको न वेद। अक्षरमविच्युतं भाम सौभाग्यं यस्याः सा अक्षरभाम्नी सा चासौ सीता च तां न जानातीत्यर्थः। अविवादे विष्णुजिते का तारका विष्णुना रामचन्द्रेण जितं विष्णुजितं तस्मिन्विष्णुजिते अविवादे सर्वसंमते सति का तारका तारकात्वं का प्राप्नोतीत्यर्थः। तारकासंबन्धस्तु चन्द्रं विनान्येन सह न भवति। प्रकृते रामचन्द्रेण सह सीतैव तारकात्वं प्राप्तुमर्हति नान्येनेत्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—गोकुलोपरि क्षुब्धस्येन्द्रस्य न किंचिच्चलतीत्याह—सीम्नो भारः सीमभारः सीमा गिरिमर्यादा तस्या भारक्षमश्चासौ यादवश्च तेन देवशक्त्या अविते रक्षिते गोकुले जिष्णोरिन्द्रस्य शिलावर्षणादिविकारता का। न कापीत्यर्थः॥

रामपक्ष में—जिस अखण्ड सौभाग्यवती सीता को लोक न जान सका, उसको छोड़कर निर्विवाद रूप से विष्णुस्वरूप राम के विजयी होने पर कौन तारा का पद ले सकती है। अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा के साथ तारा ही सुशोभित होती है, उसी प्रकार राम के साथ जानकी ही सुशोभित हो सकती है।

कृष्णपक्ष में—उस गोवर्धन पर्वत की मर्यादा के भार को उठाने में सक्षम

यदुवंशी कृष्ण के द्वारा दिव्यशक्ति से गोकुल की रक्षा की जाने पर इन्द्र-जिष्णु के द्वारा उत्पन्न किये गये उत्पात क्या हैं ? अर्थात् कुछ नहीं ॥ १२ ॥

अथ धनुषि भग्ने सति जानक्या रामो वृत इत्याह—

तीव्रगोरन्वयत्रार्यो वैदेहीमनसो मतः ।
तमसो न महीदेवैर्योत्रायन्वरगोव्रती ॥ १३ ॥

तीव्रा गावः किरणा यस्यैवंविधस्य तीव्रगोः सूर्यस्यान्वयं वंशं त्रायन्ते तेऽन्वयत्राः सूर्यवंशाभिमानरक्षका दिलीपादयस्तेष्वार्यः श्रेष्ठः सूर्यवंशालंकरणं रामः वैदेहीमनसो मतः जानक्या मनःपूर्वकं वृतः । धनुःपणबन्धेनेत्यर्थः ॥ कृष्णपक्षे—ब्रह्मसत्रं प्रति गतः कृष्णस्तैर्न मानित इत्याह—अत्रायन्वरगोव्रती कृष्णः अत्र ब्रह्मसत्रे आयन् प्राप्ताः वरा भाग्यशालिन्यो गाव एव व्रतं परिपालितत्वेनोपस्थितं यस्यासौ गोव्रती कृष्णः तमसोऽज्ञानान्महीदेवैर्ब्राह्मणैर्न मानित इत्यध्याहारः॥

रामपक्ष में—उग्र किरणों वाले सूर्य के वंश के त्राता दिलीप आदि राजाओं में श्रेष्ठ-आर्य-राम जानकी के मन को अभिमत हुये ।

कृष्णपक्ष में—इस ब्रह्मसत्र में आये हुये श्रेष्ठ गायों के पालन का व्रत धारण करने वाले अथवा श्रेष्ठ और गोपालन का व्रत लेने वाले कृष्ण अज्ञानान्धकार के कारण भूदेव ब्राह्मणों के द्वारा सम्मानित नहीं किये गये ॥ १३ ॥

अथ जानक्याः पारमार्थिकं स्वरूपं वर्णयन्नाह—

वेद या पद्मसदनं साधारावततार मा ।
मारता तव राधा सा नन्द सद्मप यादवे ॥ १४ ॥

साधारा मा अवततार । आधारेण विष्णुना सह लक्ष्मीः अवतारं चक्रे । सा का । या पद्मसदनं वेद पद्ममेव सदनं अधिवासस्थलं वेद ज्ञातवती । अनेन लक्ष्म्याः पूर्णावतार इति सूचितम् । अथ वा पद्मं विष्णोश्चरणकमलं तदेव सदनं विश्रामस्थलं जानातीति ॥ कृष्णपक्षे—अथ कापी गोपिका नन्दं प्रति राधायाः पैशुन्यं वदति—भो सद्मप गृहाधीश नन्द, सा तव राधा । सेति तच्छब्देन विदितवृत्तान्तेति सूचितम् । तथा यादवे सैवं कृष्णे मारता मदनरूपता इत्येवं समाचारोऽस्ति । अनेन कृष्णस्य वयःसंबन्धिनी वर्णिता भवति ॥ १४ ॥

रामपक्ष में—जो कमल को ही अपना निवास समझती है अथवा भगवान्

विष्णु के चरण कमलों को ही अपना आश्रय समझती है, अथवा जो कमलासन ब्रह्मा को भी पूर्णतः जानती है (न कि उनको ब्रह्मा), वही माता लक्ष्मी सम्पूर्ण अंशों से अपने आधारभूत भगवान् विष्णु के साथ अवतीर्ण हुई, वही भगवती जानकी हैं।

कृष्णपक्ष में—(कोई गोपी नन्द से राधा के विषय में कहती है) हे गृहाधीश नन्द, यह तुम्हारी राधा तो कृष्ण में कमनीयता-माररूपता-है, अर्थात् वह कृष्ण की मोहिनी अविभाज्य छवि है, अथवा वह तो यदुवंशी अवतारधारी कृष्ण में अनुरक्त साक्षात् मा लक्ष्मी है, अथवा (आप चाहे जो भी समझिये) यह राधा आपके कृष्ण में अनुरक्त नहीं हैं ॥ १४ ॥

अथेश्वरस्य धनुर्भङ्गमाकर्ण्य परशुरामोऽभ्यगादित्याह—

शैवतो हननेऽरोधी यो देवेषु नृपोत्सवः।
वत्सपो नृषु वेदे यो धीरोऽनेन हतोऽवशैः ॥ १५ ॥

नृपोत्सवः शैवतो हनने अरोधी। नृपस्य आगतस्य दशरथस्योत्सवो यस्मात्स नृपोत्सवो रामः शिवस्य पक्षपातीति शैवः परशुरामस्तस्माच्छैवतः हनने कोपाविर्भावेऽप्यरोधी न रोधं प्राप्तवान्। अकुण्ठितशक्तिरासीदित्यर्थः। विमानस्थितेषु देवेषु पश्यत्सु सत्सु ॥ कृष्णपक्षे—अथ कृष्णस्वरूपं धेनुकवधं चाह—यः वेदेऽस्ति वेदे प्रतिपादितोऽस्ति स नृषु वत्सपोऽभूत्। अनेन वत्सपेन कृष्णेन धीरो धेनुकः अवशैः असाध्यैस्तज्जातीयैरन्यैः सह हतः। मारित इत्यर्थः ॥ १५ ॥

रामपक्ष में—जब देवता विमान पर चढ़कर देख रहे थे, तब राजा दशरथ के लिए उत्सव स्वरूप जो राम हैं, वह शिवभक्त परशुराम के कुपित होने पर भी अवरुद्ध नहीं हुए।

कृष्णपक्ष में—जो वेदों में प्रतिपादित भगवत्तत्त्व हैं, वही मनुष्यों में गोपालकृष्ण हैं। इन्हीं कृष्ण के द्वारा अपने उद्दण्ड स्वजातियों के साथ धेनुक मारा गया ॥ १५ ॥

अथ परशुरामो रामं प्रति सक्रोधं वदति—

नागोपगोऽसि क्षर मे पिनाकेऽनायोऽजने धर्मधनेन दानम्।
नन्दानने धर्मधने जयो ना केनापि मे रक्षसि गोपगो नः ॥१६॥

भो क्षर नश्वर, मे पिनाके त्वं नगोपगः असि। यद्यपि त्वया जीर्णं धनुर्भग्नं तथापि मदानते धनुषि नगस्य पर्वतस्योप समीपे गच्छतीति नगोपगः पाषाणस्तत्तुल्योऽसि। मदीयधनुषोऽतिगुरुत्वेन निश्चेष्टो भवसीत्यर्थः। एवमेतादृशे त्वयि जनकेन यत्कन्यादानं कृतं तदयुक्तमित्याह—धर्मधनेन कन्यालक्षणेन अजने यद्दानं स अनायः। अजनोऽदानपात्रम्। एवम् अदानपात्रे त्वयि यद्दानं कृतं सः अनायः नयो नीतिस्तत्संबन्धी नायः, न नायः अनायः। अनीतिरित्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—दैत्यवधं दृष्ट्वा नन्दः कृष्णं स्तौति—भोः कृष्ण, त्वं नन्दानने नासि। नन्द एव आननं मुख्यो यस्मिन्गोकुले तस्मिन् ना पुरुषः परमात्मा असि। बलवत्वात्। अतएव किंलक्षणे नन्दानने। धर्मधने जन्मान्तरीयधर्मैरर्जितं तस्मिंस्तथा नः अस्माकं जयोऽपि त्वमेवासि। केनापि सुकृतविपाकेन गोपगः गोपविशेषेण वर्तमानः सन् मे इति मां रक्षसि॥ १६॥

रामपक्ष में—अरे नश्वर मनुष्य राम! तू मेरा धनुष ग्रहण करने पर (उसकी गुरुता से) पर्वत के समीपवर्ती पाषाण की भाँति जड़ हो जायेगा। राजा जनक ने कन्यारूपी धन-धर्मधन का अथवा धर्म ही जिनका धन है उन राजा जनक के द्वारा अपात्र को जो दान दिया गया वह अनुचित है।

कृष्णपक्ष में—(विचित्र कर्मों को देखकर कृष्ण से नन्द जी कहते हैं) हे कृष्ण! दूसरे जन्म के पुण्यों से अर्जित किये गये धनस्वरूप इस नन्दप्रमुख गोकुल में तुम्हीं एकमात्र पुरुष (ना = पुरुषः) हो। तुम्हीं हमारे विजय भी हो, किसी अपूर्व पुण्योदय के कारण ग्वालों में तुम्हीं हमारी रक्षा करते हो॥१६॥

अथ रामं राज्याधिकारिणं दृष्ट्वा कैकेयी सापत्नभावं दर्शयतीत्याह—

ततान दाम प्रमदा पदाय नेमे रुचामस्वनसुन्दराक्षी।
क्षीरादसुं न स्वमचारु मेने यदाप दाम प्रमदा नतातः॥ १७॥

आमस्वना अपरिपक्ववचना तथाविधा सुन्दराक्षी कैकेयी पदाय राज्यप्राप्तये यद्दाम निर्बन्धकारणं ततान विस्तारयामास। स्वपुत्राय राज्यं देयमिति दशरथाय निर्बन्धं चकारेत्यर्थः। आमस्वनेति पदेन नेदं मातृकृत्यमिति सूचितम्। अथ कथं दाम ततानेत्याह—इमे रुचा न रुचा दीप्त्या इमे रामादयः पदयोग्या न भवन्ति। तथा तस्याः किं लौकिकं भयं नास्तीत्याह—प्रमदेति। प्रकृष्टो मदोगर्वो यस्याः सा तथा॥ कृष्णपक्षे—अथ कदाचित्कृष्णेन दधिभाण्डे भग्ने दुग्धनाशे

जाते यशोदायाः अतिश्रमोऽभूदित्याह—प्रमदा यशोदा क्षीरात्सकाशादसुं प्राणमपि स्वकीयं न मेने। यथा क्षीरे ममता तथा प्राणे मा भूदित्यर्थः। अथ कृष्णबन्धनार्थं यद्दाम आप प्राप तदचारु कार्यक्षमं न भवतीति मेने। अतः दामपूरणहेतोर्नता नम्रा। परिश्रान्ताभूदित्यर्थः ॥ १७ ॥

रामपक्ष में—अपरिपक्क वाणी तथा सुन्दर नयनों वाली अत्यधिक गर्वशालिनी (प्रमदा) कैकेयी ने राज्यपद के लिये जाल फैलाया कि ये राम आदि कुमार राजोचित कान्ति से युक्त नहीं हैं।

कृष्णपक्ष में—(एकबार कृष्ण के द्वारा दही की हाँड़ी फोड़ देने पर दूध खराब हो जाने से यशोदा को बड़ा कष्ट हुआ) प्रमदा श्रीमती यशोदा जी दूध के सामने अपने प्राणों को भी कुछ नहीं समझती थीं। (अतः दूध का बर्तन फोड़ देने पर कृष्ण को बाँधने के लिये) जिस रस्सी को पाया वह (अपर्याप्त होने से) ठीक न थी। इसलिये वह परिश्रम से शिथिल हो गई ॥१७॥

अथ वनवासार्थं रामे प्रस्थिते सति अहल्योद्धरणप्रसङ्गमाह—

तामितो मत्तसूत्रामा शापादेष विगानताम्।
तां नगाविषदेऽपाशा मात्रासूत्तमतो मिता ॥ १८ ॥

मत्तसूत्रामा ताम् इतः प्राप्तः मत्तः काममोहितः सूत्रामा इन्द्रस्तां प्रति प्रसिद्धामहल्यां प्रति गतः। 'सूत्रामा गोत्रभिद्वज्री' इत्यमरः। तथा एष सूत्रामा इन्द्रः शापाद्विगानताम् इतः गौतमकृतात् विगानतां सहस्रभगत्वादिलक्षणां प्राप्तः ॥ कृष्णपक्षे—पूर्वश्लोके यशोदया कृष्णः दाम्ना बद्ध इति निरूपितं तत्र यमलार्जुनोन्मूलनप्रसङ्गमाह—तां व्यवस्थामनुभूय नगाविषदे कृष्णे सति यशोदा मात्रासु अपाशा तथा उत्तमतो मिता अभूत्। न गच्छतस्तौ नगौ स्थावरौ वृक्षौ यमलार्जुनौ ताभ्यां अविषममृतं मोक्षः तत्प्रदे कृष्णे सति यशोदामात्रासु दधिदुग्धादिविषयेषु अपाशा अनिर्बन्धा सती उत्तमतः अलौकिककर्मकर्तुः कृष्णान्मिता समर्यादाभूत् ॥ १८ ॥

रामपक्ष में—(वनवास-हेतु प्रस्थान करने पर अहल्योद्धार का प्रसङ्ग चित्रित है) काम-मोहित इन्द्र अहल्या के पास गया और उसने गौतम के शाप से तिरस्कार प्राप्त किया।

कृष्णपक्ष में—(यमलार्जुन के उन्मूलन के प्रसङ्ग में कहा गया है)—उस पाशबद्धता की स्थिति का अनुभव करके कृष्ण द्वारा स्थावर वृक्षों—यमलार्जुन को अमृतत्व-मुक्ति दिये जाने पर यशोदा जी अपने दही दूध के उपकरणों की चिन्ता से निर्मुक्त रहने लगीं और उत्तमचरित कृष्ण से मर्यादित रहने लगीं ॥ १८ ॥

अथ शूर्पणखायाः प्राप्तायाः नासिकानिकृन्तनं कृतमिति शालिनीछन्दसाह—

नासावद्यापत्रपाज्ञाविनोदी धीरोऽनुत्या सस्मितोऽद्याविगीत्या ।
त्यागी विद्यातोऽस्मि सत्यानुरोधी दीनोऽविज्ञा पात्रपद्यावसाना ॥

शूर्पणखा तावन्नासावद्यापत्रपास्ति । नासा नासिका तस्या अवद्यं विगानं छेदलक्षणं तत्र अपत्रपा निर्लज्जास्ति । लक्ष्मणस्तु आज्ञया रामाज्ञया विनोदो यस्यातिविनोदी । तथा धीरः उदात्तः श्रीरामस्तु अनुत्या शूर्पणखाकृतया स्तुत्या उपालम्भेन अद्याविगीत्या अकीर्तिख्यापनेन सस्मितोऽभूत् ॥ कृष्णपक्षे—नारदशापादुन्मोचिताभ्यां कुबेरपुत्राभ्यां स्तुतः कृष्णस्तौ प्रति स्वरूपमाह—अहं विद्यातः ज्ञानतस्त्यागी ज्ञानप्रदोऽस्मि । तथा सत्यानुरोधी सत्यं परब्रह्म तत्र अनुरोधोऽत्यासक्तिर्यस्य स तथा । लोकस्तु दीनः विषयसुखासक्तोऽस्ति । अविज्ञा अविद्या तु पात्रपद्यावसाना पात्रं ज्ञानपात्रं मद्भक्तस्तस्य पद्या पद्धतिर्ज्ञानमार्गनिष्ठत्वं तेनैवावसानं नाशो यस्याः सा तथोक्ता । एवं सति शापनिर्मुक्तिः क्रियत इत्यर्थः ॥

रामपक्ष में—शूर्पणखा नासिका के (काटने छेदने के) तिरस्कार से भी लज्जित नहीं हुई । किन्तु लक्ष्मण तो राम की आज्ञा में ही आनन्द लेने वाले थे । अथवा पिता की आज्ञा का आनन्द लेने वाले, धैर्यशील राम शूर्पणखा की वाणी से आज अकीर्ति का विस्तार किये जाने पर मुस्करा उठे ।

कृष्णपक्ष में—(नारद के शाप से मुक्त) कुबेर के दोनों पुत्रों द्वारा स्तुति करने पर कृष्ण अपना रूप बताते हैं—मैं ज्ञानवान् होने से ज्ञानप्रद हूँ और सत्स्वरूप परब्रह्म में आसक्त हूँ । किन्तु लोक दीन है (विषय सुख में अनुरक्त हैं) अविद्या तो ऐसी है जो मेरे भक्त पात्र के ज्ञान मार्ग निष्ठ होते ही नष्ट हो जाती है ॥ १९ ॥

अथ पञ्चवटीवने सपरिग्रहे रामे कृताधिवासे सति किंचिदपूर्वं जातमित्याह—

संभावितं भिक्षुरगादगारं याताधिराप स्वनघाजवंशः ।
शवं जघान स्वपराधिताया रङ्गादगारक्षुभितं विभासम् ॥२०॥

भिक्षुः संभावितमगारमगात्। भिक्षुरूपधरो रावणः संभावितं पूर्वं निर्मायकत्वेन ज्ञातम् अगारं पञ्चवटीस्थलम् अगात्। ततः स्वनघाजवंशः याताधिः सन् आप। सुतरां अनघः निष्पापः एवंविधोऽजवंशो रावणः यातो गतः आधिश्चिन्ता यस्य जानकीं दृष्ट्वा निश्चिन्तः जानकीं प्राप। निष्पापवंशोत्पन्नोऽप्येतादृशं निन्द्यं पापकर्माकरोदित्याश्चर्यादिति सूचितम्। कृष्णपक्षे—पूर्वोपक्रान्तः कृष्णो रङ्गाद्रङ्गस्थानात्सकाशात् शवं चिन्तया पूर्वमेव गतप्राणं कंसं जघान। किंभूतम्। अगारक्षुभितम्। अगारं राजकीयपरिवारस्तस्मिन्क्षुभितं सक्रोधम्। एष चाणूरघाती कृष्णो बहिः कथं न निःसार्यत इति। पुनः किंभूतम्। विभासं विच्छायं गतकान्तिम्। सद्यो मृतचिह्नयुतमित्यर्थः। अथ कस्माद्धेतोर्जघानेत्याह—स्वपराधितायाः। अपराधिनो भावः अपराधिता सुतरामपराधिता तस्यास्तथा। पितृनिर्बन्धाग्रजहननपूतनादिकूटरचनादयो येऽपराधास्तत्कर्तृत्वादित्यर्थः॥

रामपक्ष में—भिक्षुक रावण पूर्वप्रत्याशित स्थान पञ्चवटी गया। वहाँ सुन्दर एवं निष्पाप ब्रह्मकुल में उत्पन्न रावण ने निश्चिन्त होकर जानकी को ग्रहण किया।

कृष्णपक्ष में—बहुत अपराध करने के कारण कृष्ण ने रङ्गभूमि से ही क्रोध से पूरे घर को क्षुब्ध कर देने वाले, कान्तिहीन और पहले से ही मृत (तुल्य) कंस को मार डाला॥ २०॥

अथ मृगयापरावृत्तस्य रामस्य जानकीमपश्यतो निर्वेदमाह—

तयातितारस्वनयागतं मा लोकापवादद्वितयं पिनाके।
केनापि यं तद्विदवाप कालो मातंगयानस्वरतातियातः॥ २१॥

तया मा गतं तया जानक्या मेति धिक् मृषैव गतं निष्क्रान्तम्। अथ सा स्वतो न गता बलात्कारेण नीता भविष्यतीत्याह—किंभूतया। अतितारस्वनया। उच्चैराक्रोशमानयापि। एवं तस्यां गतायां पिनाके लोकापवादद्वितयं जातम्। पिनाके पुरुषार्थाधिष्ठाने लोकापवादद्वितयम् अज्ञानेन मृगपृष्ठतो धावनं स्त्रीहानिश्चेति अपवादद्वितयं जातमित्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—कंसहननात्पूर्वरङ्गमाह—यं कंसं केनापि प्रकारेण कालः कृतान्तोपमः कृष्णः अवाप। ननु परब्रह्मस्वरूपस्य कृष्णस्य कंसद्वेषः कथमित्याह—किंभूतः कालः। तद्वित् तदुपस्थितं कंसनिबन्धनं वेत्तीति तद्वित्। अथ स कः प्रकारस्तमाह—किंभूतः कालः। मातङ्गयानस्वर-

तातियातः। मातङ्गः कुवलयापीडस्तस्य यानं धावनं स्वरश्च तद्याक्रोशस्तमतिलङ्घ्य यातः। कुवलयापीडं क्रोशन्तं मारयित्वा रङ्गं प्राप्त इत्यर्थः॥

रामपक्ष में—उच्च स्वर से चिल्लाती हुई जानकी स्वतः नहीं गई होगी। उसके चलेजाने पर मेरे धनुर्धारण करने पर भी (अज्ञानवश मृग का अनुसरण तथा स्त्रीहानि) ये दो लोक-निन्दाएँ हुईं।

कृष्णपक्ष में—(कंस की मृत्यु के पूर्व का रङ्ग वर्णित है)—कंस निबन्धन को जानने वाले और गजराज कुवलयापीड की भगदड़ तथा चिग्घाड़ का अतिक्रमण करके आने वाले कंस के काल भगवान् कृष्ण किसी प्रकार उसके पास पहुँचे॥ २१॥

अथ रामस्य पुनर्जानकीं प्रति निर्वेदोक्तिमाह—

शवेऽविदा चित्रकुरङ्गमाला पञ्चावटीनर्म न रोचते वा।
वातेऽचरो नर्मनटीव चापं लामागरं कुत्रचिदाविवेश॥ २२॥

भो जानकि, अविदा अज्ञानेन मया सह पञ्चावटीनर्म न रोचते वा। येन त्वं गतासीत्यर्थः। अथ तदेवाज्ञानं प्रकटयन्नाह—शवे शवप्रिये राक्षसे चित्रकुरङ्गमालास्तीति मायामृगमजानता। मयेत्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—कृष्णस्य सामर्थ्यं कंसहननात्पूर्वमेव प्रकटीभूतमित्याह—यः कृष्णः वाते वात्याभूतदैत्ये तृणावर्ते अचरः अचलोऽभूत्तथा लामागरं कुत्रचिदाविवेश। लामा पूतना तस्याः गरं विषं नर्मैव क्रीडामात्रमिव कुत्रचिदाविवेश न कृष्णे। अनेन बाल्ये एतावन्तं पुरुषार्थं कृतवान्किं पुनर्यौवने इति सूचितम्। एवमेतदुभयं सदृष्टान्तमाह—किमिव। नर्मनटी चापमिव नटी नर्तकी चापं भ्रूभङ्गमात्रं दर्शयति। तद्विदित्यर्थः॥

रामपक्ष में—हे जानकी ! क्या मुझ अज्ञानी के साथ पञ्चवटी की प्रेमवार्ता तुम्हें पसन्द नहीं। वस्तुतः मैं शवप्रिय राक्षस की मायामृगता न जान सका।

कृष्णपक्ष में—कंस को मारने के पूर्व भी कृष्ण का पराक्रम देखा जा चुका था—जो कृष्ण वात्याभूत तृणावर्त दैत्य के आने पर भी अचल रहे, उनके लिये लगाया पूतना का विष खेल ही खेल में नर्तकी के भ्रूभङ्ग की भाँति न जाने कहाँ समा गया, (कृष्ण में व्याप्त ही न हो सका)॥ २२॥

अथ जानकीं स्कन्धे गृहीत्वा सत्वरं निर्गतस्य रावणस्य जटायुना साकं सङ्गोऽभूदिति रथोद्धतयाह—

नेह वा क्षिपसि पक्षिकंधरा मालिनी स्वमतमत्त दूयते ।
ते यदूत्तमतम स्वनीलिमाराधकं क्षिपसि पक्षिवाहने ॥ २३ ॥

जटायुः रावणं प्रति वदति—भो स्वमतमत्त, इयं मालिनी दूयते । स्वमतं स्वाग्रहस्तेन मत्त उन्मत्तः स्वाग्रहमेव करोषि परकीयविचारं न शृणोषि । असावधानत्वादित्यर्थः । मालिनी अतिसुकुमारा जानकी दूयते क्लेशं प्राप्नोति । किंभूता पक्षिकन्धरा । पक्षिणि स्वपक्षपातिनि मयि कन्धरा मन्या यस्याः सा ताम् इह मत्स्थाने न क्षिपसि वा न मुञ्चसि वा । तर्हि सङ्ग्रामेण मोचयिष्यामीति तात्पर्यार्थः ॥ कृष्णपक्षे—कंसवधे कृते उद्धवाक्रूरादयः कृष्णं स्तुवन्ति—भो यदूत्तमतम, स्वनीलिमाराधकं स्वस्य नीलिमा तं आराधयतीति स्वनीलिमाराधकं पुरुषं ते पक्षिवाहने क्षिपसि । यदुषु उत्तमतम श्रेष्ठतम त्वदनुस्मृतिं कुर्वाणं पुरुषं ते पक्षिवाहनं गरुडः तस्मिन् क्षिपसि आरोहयसि । गरुडारूढं कृत्वा वैकुण्ठं प्रति नयसीत्यर्थः । एवमपरोक्षभावनया एतत्फलं कंसस्य श्रीमत्साक्षात्कारे प्रवृत्तस्य मुक्तिरित्यत्र किं चित्रमित्यर्थः ॥

रामपक्ष में—जटायु कहता है-हे अपनी ही मान्यता को मानने वाले पागल रावण अपने पक्षवाले अथवा मुझ पक्षी पर विश्वास करने वाली, कुसुम सुकुमाराङ्गी यह जानकी बहुत दुःखी हो रही है । (क्या) तुम इनको यहाँ नहीं छोड़ोगे ?

कृष्णपक्ष में—कंस का वध करने के बाद उद्धव, अक्रूर आदि कृष्ण की स्तुति करते हैं—हे यदुवंशियों में अत्यन्त श्रेष्ठ कृष्ण ! आप अपनी नीलिमा अर्थात् नील-विग्रह के उपासक पुरुष को अपने पक्षी-वाहन गरुड पर बैठाते हो (और स्वर्ग भेजते हो) ॥ २३ ॥

ततो जटायुवचनाज्जानकीशुद्धिं लब्ध्वापि दक्षिणतश्चलितस्य रामस्यावस्थामाह—

वनान्तयानस्वणुवेदनासु योषामृतेऽरण्यगताविरोधी ।
धीरोऽविताग रण्यते मृषा यो सुनादवेणुस्वनयातनां वः ॥२४॥

स रामः योषामृते वनान्तयानस्वणुवेदनासु अरण्यगताविरोधी अभूत् । योषां जानकीं विना वनान्तेषु यानं परिभ्रमणं तत्र महाक्लेशप्राप्तावपि सुतरामणुवेद-

नासु । विवेकेन लक्ष्मणकृतेन सान्त्वनेन च ईषत्क्लेशेषु जातेषु सत्सु अरण्यगताः वानरा अविरोधिनो मित्राणि वयस्याः यस्य स्त्रीवेदनासूद्भूतासु सतीषु वानरैः सह सख्यं यज्जातं तेन विश्रान्तिरभूदित्यर्थः ॥ कृष्णपक्षे—कृष्णे विहाय गोकुलं मथुरां गते सति विरहखिन्ना गोप्यो मिथः प्रोचुरित्याह—अगण्यरते धीरः वः अविता इति । मृषा गणयितुं संभावयितुं योग्यं गण्यं न गण्यं अगण्यं अश्लाघ्यं कुब्जया सह रतं तत्र धीरः निर्लज्जत्वेन प्रवृत्तः कृष्णः वः अविता पुनर्गोकुलमागत्य रक्षिष्यतीति मृषा असत्यं तत्कुतः सुनादवेणुस्वनयातनां किं न स्मरतीत्यध्याहारः । सुष्ठु नादो यस्यासौ सुनादः एतादृशः वेणुस्तस्य स्वनस्तेन कृतां यातनां दूराद्वेणुस्वनमाकर्ण्य यावत्कृष्णदर्शनं तावत्पर्यन्तं या यातना विरहदुःखमस्माकं किं पुनस्तस्मिन् परदेशं गते सतीति किं न स्मरतीत्यर्थः ॥

रामपक्ष में—जानकी के बिना वनप्रदेश में विचरण करने पर भी अत्यल्प पीड़ा हुई, क्योंकि बनवासी वानर उनके मित्र-अविरोधी बन गए थे ।

कृष्णपक्ष में—कृष्ण के गोकुल छोड़कर मथुरा चले जाने पर गोपियाँ कहती हैं—जो कृष्ण (कुब्जा के) अप्रशंसनीय प्रेम में अडिग रत है, वह हमारी रक्षा करेगा, यह बात असत्य है । क्या वह कृष्ण सुन्दर ध्वनि वाली मुरली के बजने पर होने वाली हमारी यातनाओं की याद नहीं करता ? ॥ २४ ॥

अथ पूर्वश्लोके अणुवेदनास्विति पदेन महति दुःखे सति कथं विश्रान्तिरित्याह—

किं नु तोयरसा पम्पा न सेवा नियतेन वै ।
वैनतेयनिवासेन पापं सारयतो नु किम् ॥ २५ ॥

पम्पा तोये रसः स्वादुता यस्याः सा तोयरसा एवंविधा पम्पा किं नास्ति । अस्त्येवेत्यर्थः । तथा—वै इति निश्चयेन । नित्यनियतेन हनुमता सेवा किं नास्ति । अस्त्येव । एवमुभयथापि रामस्य विश्रान्तिर्विरहदुःखेऽप्यासीदित्यर्थः ॥ कृष्णपक्षे—गोप्य उद्धवं परिहसन्ति—वैनतेयनिवासेन गरुडनिवासेन कृत्वा पापं सारयतो दूरीकुर्वतः पुरुषस्य किं नु वाच्यमित्यध्याहारः । कृष्णोपासनया निष्पापस्त्वं कथमस्मान्प्रतारयसीति सूचितम् ॥

रामपक्ष में—क्या (विरही राम की सान्त्वना के लिये) सुस्वादु जलवाली पम्पा न थी, निश्चित रूप से रत हनुमान की सेवा क्या नहीं थी ? अर्थात् थीं ।

कृष्णपक्ष में—गोपियाँ कृष्ण का उपहास उद्धव से करती हैं—गरुड पर निवास करने के कारण अथवा गरुड पर निवास करके या गरुडरूप वाहन के द्वारा पापों को दूर करने वाले पुरुष को हम क्या कहें ? ॥ २५ ॥

अथ वालिना हृतदारः सुग्रीवो रामं शरणं प्रयात इत्याह—

स नतातपहा तेने स्वं शेनाविहितागसम् ।
संगताहिविनाशे स्वं नेतेहाप ततान सः ॥ २६ ॥

स नतातपहा रामः शेन स्वं तेने नतस्य नम्रस्य शरणं गतस्य आतपम् संतापं हन्तीति तथाविधो रामः शेन सुखेन स्वं तेने । आश्वासजनितसुखेन स्वं स्वकीयं सुग्रीवं तेने विस्तारितवान् । न विहितं संपादितम् आगः अपराधो येन तथा । निरपराधस्वेनाविहितागसमिति सूचितमित्यर्थः ॥ कृष्णपक्षे—उद्धवः गोपिकां प्रति कृष्णस्याश्रितपक्षपातं वदति—स नेता नियन्ता कृष्णः इह सरस्वतीरसं स्थानं नन्दं संकटके आप प्राप तया संगताहिविनाशे स्वं जनं ततान । संगतः प्राप्तः यो अहिः सर्पस्तस्य विनाशे कृते सति स्वकीयं जनं गोकुलस्थितं ततान विस्तारयामास । नन्दं निधनशङ्कया मुमूर्षुं विस्तारितवान् स किं भवतीस्युत्प्रेक्षत इति सूचितम् ॥

रामपक्ष में—प्रणतजनों के संताप को नष्ट करने वाले राम ने सुखपूर्वक अपने निरपराध सुग्रीव का विस्तार किया अर्थात् अपना बना लिया ।

कृष्णपक्ष में—उद्धव गोपियों से कह रहे हैं कि—उस कृष्ण ने इसी सरस्वती रस नामक स्थान पर नन्द को संकट में पाया था और आये हुए सर्प का विनाश करके अपने गोकुलस्थित लोगों का विस्तार किया ॥ २६ ॥

अथ वालिनं हत्वा सुग्रीवपत्नीं मुमोचेत्याह—

कपितालविभागेन योषादोऽनुनयेन सः ।
स नये न नु दोषायो नगे भाविलतापिकः ॥ २७ ॥

स रामः अनुनयेन प्रीत्या कपितालविभागेन योषादोऽभूत् । कपिर्वाली तालाश्च तद्रक्षकास्तेषां विभागेन विच्छेदेन योषां ददातीति योषादः योषां सुग्रीवपत्नीं दत्तवान् ॥ कृष्णपक्षे—गोपिका वदन्ति—स कृष्णः नये नीतिमार्गे नास्ति । नु इति वितर्के । किंतु दोषायोऽस्ति । दोषाणां दुःखानाम् आयः प्राप्ति-

यँस्मात्स तथा। पुनरायास्यतीति चेन्न। कुतः। यथा नगे भाविलतापिकः नगे पर्वते भाविनी या लता वल्ली सहकारशाखा तत्र पिकः पिकतुल्यः। यथायमसंभावितार्थः तद्वदित्यर्थः॥

रामपक्ष में—उन राम ने प्रीतिपूर्वक वानर वाली तथा उसके रक्षकों का विनाश करके सुग्रीव की पत्नी दिलाई।

कृष्णपक्ष में—(गोपियाँ कहती हैं)—वह कृष्ण नीति पथ पर नहीं हैं, अपितु दुःखदायी है और पर्वत पर उत्पन्न आम्रतरु की शाखा पर स्थित कोकिल की भाँति असंभावित हैं॥ २७॥

अथ वालिपुत्रः अङ्गदो रामं प्रति वदति—

ते सभा प्रकपिवर्णमालिका नाल्पकप्रसरमभ्रकल्पिता।
तात्पिकभ्रमरसप्रकल्पना कालिमार्णव पिक प्रभासते॥ २८॥

भो राम, ते सभा प्रकपिवर्णमालिकास्ति। प्रकृष्टा ये कपयो वानरास्तेषां ये विचित्रवर्णास्तेषां माला यस्यां सा तथा नानाविधवानरश्रेणीसंपन्ना। सा तु अल्पकप्रसरं यथा भवति तथा अल्पसंख्याका परंतु अभ्रकल्पिता नास्ति। अभ्रे आकाशे मेघमण्डलपर्यन्तं वा नास्ति। अनेन रक्षःपङ्क्तिः आकाशे प्रकल्पितास्तीत्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—गोपिकास्तावदन्योपदेशेन पिकं प्रति वदन्ति—भोः कालिमार्णव मालिन्यसमुद्र पिक कोकिल, त्वयि तात्पिकभ्रमरसप्रकल्पना प्रभासते। तल्पे भवं तात्पिकं सुरतं तस्य भ्रमस्तत्र यो रसः स प्रभासते स्वप्ने सुरतभ्रमे यावान् रसः स एव त्वयि भासते। न साक्षादस्मत्सुरतसुखं तत्तु तव स्वप्नेऽपि दुर्लभमित्यर्थः॥

रामपक्ष में—हे राम! तुम्हारी सभा अनेक प्रकार के बन्दरों के रङ्गों से संयुक्त है, इसका विस्तार कम नहीं है, अपितु आकाश तक कल्पित है। अथवा यह थोड़े विस्तार वाली है और आकाश तक नहीं फैली है, अर्थात् आकाश में तो मेघदल श्यामल राक्षस ही हैं।

कृष्णपक्ष में—गोपियाँ कोयल से कहती हैं कि हे मालिन्यसमुद्र कोयल! शय्या पर सुरत के भ्रम अर्थात् स्वप्न में जितने आनन्द की कल्पना होती है उतना ही तुम में प्रतीत होती है॥ २८॥

अथ रावणो यद्यपि सकलसैन्यसन्नाहवानस्ति तथापि तत्र वीरलक्षणं नास्तीत्याह—

रावणेऽक्षिपतनत्रपानते नाल्पकभ्रमणमक्रमातुरम् ।
रन्तुमाक्रमणमभ्रकल्पना तेन पात्रनतपक्षिणे वरा ॥ २९ ॥

रावणे अक्रमातुरं यथा भवति तथा अक्षिपतनत्रपानते सति अल्पकभ्रमणं न भविष्यति । न क्रमः अक्रमः परस्त्रीहरणादिकस्तेन आतुरं यथा स्यात्तथा अक्षि-पतनं रामस्य दृष्टिपातस्तेन या त्रपा लज्जा तया रावणे नम्रे सति पर्याकुलतया यत् भ्रमणं चित्तभ्रमः किं न भविष्यति । भूयादेव । अहो वीरव्रतमतिक्रम्य पापं कृतवतो मम जयो नास्त्येवेति लज्जया कृत्वा चित्तस्यैव किं त्रासो न भविष्यतीत्यर्थः ॥ कृष्णपक्षे—उद्धवो गोपिकाः प्रति वदति—भो गोप्यः, तेन आक्रमणं दैत्यनिबर्हणादिकं तथा अभ्रवत्कल्पना मेघश्यामता च रन्तुं क्रीडार्थमवलम्बिता तत्स्थानेऽनेन तस्य न किमपि प्रयोजनं तत्र तेन कारणेन सा मेघश्यामता पात्र-नतपक्षिणे वरा पात्रे नताः पात्रनताः पुरुषास्तेषां पक्षो यस्य स तत्पक्षी तस्मै कृष्णाय वरा कल्पिता । भक्तानां ध्यानगोचरत्वायेत्यर्थः । तथा च भवतीनां ध्यानयोगेनैव कृतार्थत्वमस्तीति सूचितम् ॥

रामपक्ष में—रावण की लज्जा का वर्णन—(परस्त्रीहरण आदि के रूप में परम्परा का भङ्ग करने से) राम की दृष्टि पड़ते ही व्याकुलतापूर्वक लज्जा से रावण के झुक जाने के कारण चित्त में तनिक भी त्रास नहीं हुआ होगा क्या ?

कृष्णपक्ष में—उद्धव गोपियों से कहते हैं—हे गोपियो ! उनके द्वारा किये गये युद्ध और उनकी मेघश्यामता सब उनकी क्रीड़ामात्र थी । वस्तुतः सत्पात्र के प्रेमी विनम्र पुरुष का पक्ष लेने वाली (उनकी ध्यानगम्य) मूर्ति वरणीय है, अर्थात् वह ध्यानगम्य है ॥ २९ ॥

अथ सीताशुद्ध्यर्थमादिष्टो हनुमान् रामं प्रति विद्युन्मालयाह—

दैवे योगे सेवादानं शङ्का नाये लङ्कायाने ।
नेयाकालं येनाकाशं नन्दावासे गेयो वेदैः ॥ ३० ॥

अये श्रीराम, लङ्कायाने लङ्कां प्रति गमने शङ्का नास्ति । कुतः । यतो दैवे योगे सेवादानं जातमस्ति । देवसंबन्धी दैवस्तस्मिन् तव योगे या सेवावलम्बि-

तास्ति। अतो लङ्कागमने त्वत्सेवाया एव सामर्थ्यमित्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—पुनरुद्धवः कृष्णं स्तौति—स कृष्णः नन्दावासे नन्दव्रजेऽभूत्। स कः। येन आकाशं नेयाकालं नेतुं संहर्तुं योग्यो नेयः आ समन्तात् कलयति तत् एवंविधमाकाशं काले आकाशादिकमपि संहर्तुं क्षमः। तत्रभवतीनां सारः श्रमः कियानित्यर्थः। किंभूतः। वेदैः गेयः गातुं योग्यः॥

रामपक्ष में—हनुमान जी राम से कहते हैं—हे राम! लङ्का को जाने में सन्देह नहीं, क्योंकि आप जैसे देवपुरुष का मिलन होने से सेवा का अवसर मिला है।

कृष्णपक्ष में—पुनः उद्धव जी कृष्ण की बात कहते हैं—'हे गोपियो, जो आकाश तक को समेटने में समर्थ हैं, जो वेदों के भी वर्णनीय हैं, वह कृष्ण नन्द के घर थे'॥ ३०॥

अथ जानकीशुद्धिं कृत्वा परावृत्तो हनुमान् रामं प्रति वदतीति समाक्षरया शालिन्याह—

शङ्कावज्ञानुत्त्वनुज्ञावकाशं याने नद्यामुग्रमुद्याननेया।
याने नद्यामुग्रमुद्याननेया शंकावज्ञानुत्त्वनुज्ञावकाशम्॥ ३१॥

हे राम, सा जानकी उग्रमतिक्लेशं यथा भवति तथा नद्यां कुल्यायाम् उद्याने नेया उद्याने क्रीडावने नेतुं योग्या नेया अस्ति। तथा सीता कृत्रिमसरिदुपकण्ठे उद्यानेऽस्तीत्युक्तम्। इत्थं त्वं रावणस्य क्रीडावनं गन्तुं कथमवकाशं लब्धवानित्याह—याने प्रयाणकाले अनुज्ञावकाशं यथा भवति तथा शङ्कावज्ञानुत् तु श्रीमदनुज्ञालब्धावकाशत्वेन शङ्कावज्ञे नुदिते। तथा। शङ्का राक्षसभयं तत्कृतावज्ञा जम्बूवनपालादिकृता। तदुभयं मया निराकृतमित्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—गोकुलात्परावृत्त उद्धवः कृष्णं प्रति वदति—भोः कृष्ण, उद्याननेया कापि गोपिका नद्यां याने उग्रम् अतिक्लेशं यथा भवति तथा तिष्ठति। या त्वया पूर्वं स्कन्धोपरि धृत्वा उद्यानं प्रति प्रापिता तर्हि तस्या दयितदेवरादयः किं न सन्तीत्याह—हे कृष्ण, सा गोपिका अहं पुनरागमिष्यामीति श्रीमदनुज्ञया लब्धावकाशं यथा स्यात्तथा शङ्कावज्ञा सती तिष्ठति। शङ्काया दयितभयं तस्य अवज्ञा अवगणना यस्याः सा दयितदेवरादीनां शङ्काभयं तथा तत्कृतविकाराद्यविगणय्य प्राणावशेषा तिष्ठति। एवं तयैकया विनान्याः सर्वा अपि मया संबोधिता इत्युक्तं भवति॥

रामपक्ष में—हे राम, सीता जी क्लेश में हैं, उनको कुल्या-कृत्रिम नदी तथा क्रीडावन से लाना चाहिये। प्रयाण के समय में आपकी कृपा से अवसर मिलने पर मैंने लंका में होने वाले राक्षसभय तथा तिरस्कार को समाप्त कर दिया।

कृष्णपक्ष में—उद्धव गोकुल से लौटकर कृष्ण से कहते हैं—हे कृष्ण उद्यान में लाने योग्य कोई गोपी नदी में यान पर बहुत दुःखी है। वह आपके पुनः लौटने की प्रतिज्ञा से अवसर पाकर पति आदि के भय तथा समाज के तिरस्कार अथवा सम्बन्धियों द्वारा उत्पादित विकारों का विचार छोड़कर वहीं है ॥ ३१ ॥

अथ समुद्रं नियम्य लङ्कां गन्तुं शक्तोऽपि रामः क्षुद्रवानरकौतुकं द्रष्टुं सेतुबन्धार्थमादिदेशेत्याह—

वा दिदेश द्विसीतायं यं पाथोयनसेतवे।
वैतसेन यथोपायं यन्तासीद्विशदे दिवा ॥ ३२ ॥

वेति अथवा स रामः यं कंचिद्वानरं पाथोयनसेतवे दिदेश। पाथसामुदकानामयनं यस्मिन् पाथोयनः समुद्रस्तस्य सेतवे सेतुबन्धायादिदेश आज्ञापयामास। किमर्थं। परम् द्विसीतायं यथा स्यात्तथा। द्वयोः सीतयोः समाहारो द्विसीतं तस्यायः प्राप्तिः। किं पुनरेकसीतालब्धिः। अपरं सेतुबन्धाख्यं पुरुषार्थं सीताद्वयलाभो भविष्यतीत्युत्साहेनादिदेशेत्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—कंसे हते मातामहायोग्रसेनाय राज्यं दत्त्वा स्वयं तत्सैन्यपतिर्बभूवेत्याह—स कृष्णः यथोपायं वैतसेन यन्तासीत्। यथोपायं राजनीतिमनतिक्रम्य वेतसेन वैतसेन वैत्रधारत्वेन नियन्तासीत् विशदे दिवा सुमुहूर्तोपलक्षिते दिवा दिवसे॥

रामपक्ष में—अथवा राम ने किसी वानर को, सीता तथा सीताप्राप्ति के सदृश पुरुषार्थ, इस प्रकार दो सीताओं की प्राप्ति होगी, इस उत्साह से समुद्र में सेतु बाँधने की आज्ञा दी।

कृष्णपक्ष में—उग्रसेन को राज्य देकर कृष्ण स्वयं किसी शुभ दिन पूर्ण समुदाचार के साथ वेत्रधार-सेनापति-के रूप में राज्य के नियन्ता बने ॥ ३२ ॥

अथ राक्षसैः सह संग्रामोपस्थितः श्रीरामो हनुमत्प्रशंसामाह—

वायुजोऽनुमतो नेमे संग्रामेऽरवितोऽह्नि वः।
वह्नितो विरमे ग्रासं मेनेऽत्रोऽमनुजो युवा ॥ ३३ ॥

हे वानराः वः इति युष्माकं मध्ये अरवितः अह्नि वा संग्रामे उपस्थिते सति वायुजोऽनुमतः अस्ति। न रविर्यस्मिंस्तत् अरवि तस्मिन्। रात्राविल्यर्थः। वा अह्नि दिवा वा संग्रामे उपस्थिते सति हनुमानेव अनुमतः संमतः। रात्रौ दिवा वा मायाविभिः सह संग्रामे वायुपुत्र एव निर्वाहयिष्यतीत्युक्तं भवति। इमे सर्वे वानराः नानुमताः न संमताः॥ कृष्णपक्षे—कंसादिहनने राज्यस्थापने वा कृष्णस्य किं चित्रं वर्णनीयमित्याह—अतः परं यः विरमे प्राप्ते सति वह्नितः वह्निमेव ग्रासं भक्ष्यत्वेनोपस्थितं मेने। अमनुजः देवः सन् युवा पराक्रमी। तत्र न किमपि चित्रमित्यर्थः॥

रामपक्ष में—श्रीराम युद्ध उपस्थित होने पर हनुमान् के विषय में कहते हैं—हे वानरो, तुम्हारे बीच, रात हो अथवा दिन, युद्ध के लिये केवल वायुपुत्र हनुमान् को ही आज्ञा है, अन्य जो ये हैं, उनको नहीं।

कृष्णपक्ष में—कवि कहता है कि कंस आदि का वध तथा राज्य की स्थापना आदि कृष्ण के लिये विचित्र बातें नहीं-क्योंकि-इसके अतिरिक्त विपत्ति आने पर जिसने अग्नि को ही ग्रास समझा-भक्ष्य समझा-वह अमानवीय दैवी युवक है॥३३॥

अथ रामरावणयोर्युद्धप्रसङ्गे वानरैर्व्याकुलितो रावणो रामेण सह न प्रभावमगादित्याह—

क्षताय मा यत्र रघोरितायुरङ्कानुगानन्यवयोऽयनानि।
निनाय यो वन्यनगानुकारं युतारिघोरत्रयमायताक्षः॥ ३४॥

यत्र अङ्कानुगानन्यवयोऽयनानि सन्ति तत्र इतायुः रघोः क्षताय माभूत्। अङ्कम् अनुगच्छन्ति ते अङ्कानुगाः शरणं गता वानरास्तेष्वनन्यं वयः जन्म येषां ते अनन्यवयसः सुग्रीवहनुमदादयस्तेषां अयनानि संग्रामे व्यूहप्रवेशपरिसरणानि यत्र तत्र इतायुर्दशास्यः रघोः रामचन्द्रस्य क्षताय शस्त्राद्यभिघाताय मा न समर्थो भूत्। प्रथमतो वानरैरेव व्याकुलीकृतः रामेण सह योद्धुमलब्धावकाशोऽभूदित्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—वृन्दावने कृष्णो दैत्यानवधीदित्युक्तम्। तत्र त्रयमतिभयानकं हतमित्याह—यः आयताक्षः कृष्णः युतारिघोरत्रयं मुक्तिं निनाय। युताः योगं प्राप्ताश्च ते अरयश्च तेषु घोरत्रयं निनाय प्रापितवान्। पूतना अघासुरः केशी चेति भयानकं त्रयं स्वान्तिके प्रापितमित्यर्थः। अथ भयानकमेव व्यनक्ति—

किंभूतं घोरत्रयम्। वन्यनगानुकारं वने स्थितः वन्यः स चासौ नगः पर्वतस्तद्वदनुकारो यस्य सः। तथा अतिप्रचण्डमित्यर्थः॥

रामपक्ष में—जहाँ पर शरण में आये हुये वानरों में दूसरा जन्म न प्राप्त करने वाले अर्थात् अमर सुग्रीव, हनुमान् आदि संग्राम में सन्नद्ध थे, वहाँ पर मरा सा (हतायुः) रावण राम को विक्षत करने में समर्थ नहीं हुआ।

कृष्णपक्ष में—उस विशाल नेत्र कृष्ण ने वन में स्थित पर्वत के सदृश प्रचण्ड आकृति वाले आये हुये तीन भयङ्कर राक्षसों-पूतना, अघासुर तथा केशी-को मुक्ति दी॥ ३४॥

अथ सपरिवारस्य रावणस्य तारके परब्रह्मणि प्रवेशोऽभूदित्याह—

तारके रिपुराप श्रीरुचा दाससुतान्वितः।
तन्वितासु सदाचारु श्रीपरा पुरि के रता॥ ३५॥

रिपुः श्रीरुचा तारके आप रिपुः रावणः श्रीर्मोक्षलक्ष्मीः तस्याः रुग्दीप्तिः प्रकाशस्तेनेत्यर्थः। किंभूतः। दाससुतान्वितः। दासाश्च कुम्भकर्णादयः सुता इन्द्रजिदादयस्ते सर्वेऽपि तारकं प्राप्ता इत्यर्थः॥ कृष्णपक्षे—सदा चारु यथा स्यात्तथा तन्वितासु गोपीषु श्रीपरा पुरि के रता आसीत्। तनुना शरीरेण इतासु प्राप्तासु गोपिकासु मध्ये श्रियः लक्ष्म्याः परा श्रीपरा द्वितीयलक्ष्मीरिव सैरन्ध्रीपुरि मथुरायां के परब्रह्मणि कृष्णे रतासीत्। गोकुले कृष्णविरहेण तदा ध्याननीतासु सतीषु मथुरायां कृष्णस्य सैरन्ध्रया साकं गार्हस्थ्यमभूदित्यर्थः॥

रामपक्ष में—(राम के मारने से)—सेवकों तथा पुत्रों के साथ शत्रु रावण ने मोक्ष-लक्ष्मी की कान्ति से चमत्कृत होकर तारक ब्रह्म प्राप्त किया।

कृष्णपक्ष में—सर्वदा सौन्दर्ययुक्त शरीरों से प्राप्त हुई (तनु + इतासु गोपियों में द्वितीय लक्ष्मी की भाँति मथुरा नगरी में (वह कुब्जा) आनन्दस्वरूप कृष्ण में अनुरक्त थी। (अथवा गोकुल में जब) गोपियाँ विरह से दुबली हो रही थीं उस समय सदा सुन्दर लगने वाली दूसरी लक्ष्मी की भाँति, अथवा सदा सुन्दरता में लक्ष्मी से बढ़कर लगने वाली, अथवा सुन्दर रीति से सदा कृष्ण के सौन्दर्य में अनुरक्त होकर, अथवा धन के लोभ में आकर (कुब्जा) मथुरा नगरी में आनन्दस्वरूप (क = आनन्द) में अनुरक्त थी॥ ३५॥

अथ रावणे सपरिवारे हते सति लङ्का हतप्रभाभूदिति विद्युन्मालयाह—

लङ्का रङ्कागाराध्यासं याने मेया काराव्यासे ।
सेव्या राका यामे नेया संध्यारागाकारं कालम् ॥ ३६ ॥

याने रामागमने सति लङ्कां रङ्कागाराध्यासं यथा स्यात्तथा मेयाभूत् । लङ्का नगरी रङ्कस्यागारं रङ्कागारं तस्य अध्यासो भ्रमस्तेन ज्ञातुं योग्याभूत् । इयं लङ्का तु कस्यचिद्रङ्कस्य अगारमिति भ्रमेण ज्ञाताभूदित्यर्थः । कस्मिन्सति । काराव्यासे सति कारा बन्दीगेहं तस्य अव्यासे अविस्तारे सति । काराविस्तारं निर्भिद्य बन्दीभूतेषु देवेषु निर्मोचितेषु सत्स्वित्यर्थः ॥ कृष्णपक्षे—पूर्वं सैरन्ध्रया साकं कृष्णस्य गार्हस्थ्यमभूत्तत्र दृष्टान्तमाह—सेव्या सेवितुं योग्या सेव्या अतिरमणीयाभूदित्युक्तम् । सैरन्ध्री यामे संयोगावसरे कालं मेघश्यामं कृष्णं प्रति नेया नेतुं योग्या नेयाभूत् । अन्वययोग्यपदेनोभयोः संयोगे शोभातिशयः सूचितः । कालमिव राका संध्यारागाकारमिव पूर्णचन्द्रोदयोपलक्षिता राका संध्यारागाकारं प्राप्य यथा शोभातिशयशालिनी भवति तद्वदित्यर्थः ॥

गोदावरीब्रह्मगिरेः सकाशात् संप्रापिता प्रागुदधिं प्रयत्नात् ।
येनर्षिणा सोऽपि पुनः प्रतीपमानेतुमद्रिं प्रभवेत्किमेताम् ॥
एवं विलोमाक्षरकाव्यकर्तुर्भूयांसमायासमवेक्ष्य तज्ज्ञाः ।
जानन्त्विमां चित्रकवित्वसीमां दैवज्ञसूर्याभिधसंप्रदिष्टाम् ॥

रामपक्ष में—(विजय करके राम के) चले जाने पर (वन्दी देवताओं को मुक्त कर देने से कारागार का विस्तार समाप्त हो जाने के कारण लङ्का में किसी धनहीन के घर का आभास होता था ।

कृष्णपक्ष में—संमिलन के समय संध्या की कृष्णता तथा अरुणिमा से संयुक्त समय की भाँति सायंकालीन अनुराग-लाली तथा प्रेम-से संयुक्त श्यामल कृष्ण के पास वह रमणीया कुब्जा उसी प्रकार लाने के योग्य थी जिस प्रकार संध्या के अरुणिम समय के साथ पूर्णचन्द्रोदय । अर्थात कृष्ण के साथ उसका समागम उसी प्रकार सुशोभित होता था, जैसे संध्या से पूर्णचन्द्र का उद्भव सुशोभित होता है ॥ ३६ ॥

इति श्रीदैवज्ञपण्डितसूर्यकविविरचितं विलोमाक्षररामकृष्णकाव्यं समाप्तम्

हिन्दी राघवपाण्डवीय

व्याख्याकार—पं० दामोदर झा

प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता पण्डित कविराज ने इस ग्रन्थ में आदि से अन्त तक एक ही शब्दावली से रामायण तथा महाभारत दोनों कथानकों का वर्णन किया है। यही इस महाकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। कविने पाण्डव पक्ष का बर्णन राम के पक्ष के वर्णन से मिला कर तथा कौरव पक्ष का वर्णन रावण पक्ष के वर्णन से मिलाकर किया है। श्लेषकाव्यों में यह महाकाव्य सर्वोपरि है। इसके काठिन्य लोक प्रसिद्ध है। सरल सुबोध राष्ट्रभाषा में अनूदित यह ग्रन्थ प्रथम वार प्रकाश में आया है। भूमिका में ग्रन्थ के रचनाकाल, ग्रन्थकार, पात्र-परिचय आदि के वारे में अभिनव विचार सामग्री प्रस्तुत की गयी है १२-५०

राघवनैषधीयम्

श्रीहरदत्तसूरि विरचितम्। सविशेष-विमर्शिनी-प्रकाश

-संस्कृत-हिन्दी व्याख्योपेतम्

व्याख्याकार—पं० रामकुबेर मालवी

इस काव्य में श्री राम के समान एक और युगीन राजा नल के महत्त्व का एक साथ चरित अंकित किया गया है। मानव राजा नल के सौन्दर्य आकर्षण को देवताओं की तुलना में अधिक प्रभावशाली दिखाकर इस चरित के द्वारा कवि देवताओं पर मनुष्य की अनिवार्य विजय घोषित करता हुआ प्रतीत होता है। यह ग्रन्थ काव्यों में प्रायः सबसे क्लिष्ट माना जाता है। अभी तक इसका पठन-पाठन अथक श्रम-साध्य था। काशी के सर्वमान्य कवितार्किक मालवीयजी की लौह-लेखनी से सर्वांगपूर्ण इसकी सुबोध व्याख्याने ग्रन्थ को अत्यन्त सरल बना दिया है। ३-००

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१